अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-38, अंक-18, 1-15 मई 2015

1 मई श्रमिक दिवस पर विशेष

बोधगया भूमि संघर्ष

मज़दूर, धरती और औरत

भूदान, किसान और भूमि - अधिग्रहण अध्यादेश

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुखपत्र
सर्वोदय जगत
सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 38, अंक : 18, 1-15 मई, 2015

संपादक — **बिमल कुमार** — मो. : 9235772595
कार्यकारी संपादक — **अशोक मोती** — मो. : 7080882866

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह, भवानी शंकर 'कुसुम'
बिमल कुमार, अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 38350201004310
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. जीवन-मूल्यों के संजीवन का... 2
2. संपादकीय... 3
3. जीवन-दान... 4
4. भारतीय किसान समाज व अध्यादेश... 7
5. अमृत-कण प्रयोग का परिणाम... 8
6. भूदान, ग्रामदान और भूमि... 10
7. बोधगया का भूमि-संघर्ष... 12
8. फिर भी महिलाएं किसान का दर्जा... 17
9. अपनी भूमि पर बेघर आदिवासी... 18
10. गतिविधियां एवं समाचार... 19
11. कविता : नाटकबाज... 20

'सर्वोदय जगत' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनके साथ सर्व सेवा संघ या संपादक मंडल का सहमत होना जरूरी नहीं है।

दस्तावेज

जीवन-मूल्यों के संजीवन का आंदोलन भूदान

❑ चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

ऍटम बम से अधिक सामर्थ्यशाली

यह आंदोलन हमारे राष्ट्रीय जीवन-मूल्यों के संजीवन का आंदोलन है। सारे देश में यह एक सार्वजनिक यज्ञ के रूप में चलाया जा रहा है। पश्चिम के कम्युनिज्म विरोधी राष्ट्र भी संहार के साधन बढ़ाने में लगे हुए हैं। ऐसे समय भारत उन्हें शांतिमय और अहिंसात्मक क्रांति का सच्चा रास्ता दिखा रहा है। यज्ञ हमेशा संगठनों के निवारण के लिए और सबके कल्याण के लिए होते रहे हैं। भूदान-यज्ञ भी इसी अर्थ में एक जनव्यापी यज्ञ है। अपने पास जो कुछ हो, उसमें से दूसरों को हिस्सा देने की प्रेरणा यह पैदा करता है। मनुष्य में धार्मिकता जगाता है, इसलिए इसमें ऍटम बम से अधिक सामर्थ्य है।

इतिहास में इस तरह का अपनी इच्छा से भूदान पहले कभी नहीं हुआ। यह आंदोलन अपूर्व है। इसमें किसी तरह के जोर-जबरदस्ती के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। जो लोग हिंसा से जमीन का बंटवारा करना चाहते हैं, उनके मार्ग से यह मार्ग बिल्कुल भिन्न है। इसलिए कार्यकर्ताओं को शांति रखनी चाहिए। जो लोग दान नहीं देते, उनको भला-बुरा नहीं कहना चाहिए—उन्हें कोसना नहीं चाहिए। उनपर अनुचित दबाव डालकर उनकी कठोर आलोचना भी नहीं करनी चाहिए। जो दान मिले, वह स्वेच्छा से मिले। उसमें कानून या हिंसा की धमकी नहीं होनी चाहिए। मैं तो कहता हूं, जो देते हैं उन्हें एक नमस्कार करो और जो नहीं देते, उन्हें दो नमस्कार करो।

गरीबों से दान क्यों

जिनके पास जरूरत के लिए भी काफी जमीन नहीं है, उनसे जमीन क्यों ली जाय, ऐसी मुझे शंका हुई। परंतु इसमें भी एक दृष्टि है। जो लोग गरीब हैं, उनमें भी उदारता होनी चाहिए। अपने पास जो है, उसमें दूसरों को हिस्सेदार बनाने की वृत्ति उनमें भी बढ़नी चाहिए। नहीं तो वे अपनी सम्पत्ति बढ़ाने की फिक्र में रहेंगे। यदि वे सोचेंगे जब हमारे पास अधिक होगा, तब हम देंगे, तो वे कभी नहीं देंगे। सम्पत्ति बढ़ाने की धुन उनपर सवार होगी। संग्रह के लिए लोभ की वृत्ति की जरूरत रहेगी और जैसे-जैसे संग्रह बढ़ेगा, वैसे-वैसे लोभ भी बढ़ेगा। पर आज, जबकि वे गरीब हैं, दूसरे गरीबों के लिए उनके मन में सहानुभूति है। आज वे आपस में आसानी से एक-दूसरे को दे सकते हैं।

सब सम्पत्ति : भगवान की देन

जिन लोगों को जमीन मिली है, वे उसे अपनी सम्पत्ति न समझें। उसे भगवान की देन, समाज की सम्पत्ति समझें। उसमें खूब खाद दें, खूब मेहनत करें, खूब सुधार करें। इस जमीन को गांधीजी का प्रसाद मानें। आपस में लड़ाई-झगड़ा न करें। कोयम्बतूर के किसान जमीन के इंच-इंच में से खूब पैदावार निकालने के लिए प्रसिद्ध हैं। लेकिन एक-एक इंच के लिए लड़ मरने में भी मशहूर हैं। अब उसी इलाके में भूदान मिला है और भूमिहीनों को जमीन बांटी गयी है। अब तो झगड़े का मुंह काला होगा।

भूमिदान सब दानों में श्रेष्ठ है। वह लोगों में धार्मिकता का विकास करता है। मैं इस आंदोलन की सफलता चाहता हूं। ❑

17 मई, 1953 को इरोद के पास अर्चलूर नामक गांव में तमिलनाडु भूदान-यज्ञ समिति की ओर से 250 एकड़ जमीन 55 भूमिहीनों को समर्पित करने के लिए आयोजित समारोह में मद्रास के मुख्यमंत्री श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का अभिभाषण। **–कार्य. सं.**

संपादकीय

श्रम की गरिमा, श्रम का दोहन

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान श्रम का रहा है। श्रम मनुष्य के आनन्द का भी स्रोत रहा है तथा मनुष्य की सभ्यता के विकास का भी कारक रहा है।

श्रम एवं प्रकृति के संयोग से मनुष्य ने उत्पादन कर अपने जीवन-यापन को उन्नत बनाया। धीरे-धीरे सामाजिक जीवन के संगठन तथा सामाजिक सुरक्षा दोनों के केन्द्र में श्रम आ गया।

श्रम की गरिमा एवं श्रम करने वालों के बीच सहयोग-सहकार प्रत्येक परम्परागत समुदाय के संगठन का आधार बनता चलता गया। प्रकृति के जीवन आधार स्रोतों का संरक्षण एवं संवर्धन इस सभ्यता का एक अभिन्न अंग बनता चला गया। परम्परागत समुदायों में श्रम करने वाला श्रमिक अपने उपकरणों एवं उत्पादन के साधनों के उपयोग करने का स्वतंत्र अधिकार रखता था। स्वतंत्र अधिकार शब्द का इस्तेमाल हमने इसलिए किया, क्योंकि प्रकृति प्रदत्त स्रोतों पर निजी स्वामित्व की अवधारणा नहीं थी।

पूंजीवादी उत्पादन पद्धति एवं पूंजीवादी बाजार ने श्रमिक को उसके उत्पादन के साधनों से अलग कर दिया एवं उसे महज श्रम बेचने वाली इकाई में परिवर्तित कर दिया। इसी प्रकार प्रकृति प्रदत्त स्रोतों को भी पूंजीवादी बाजार में खरीद-फरोख्त की वस्तु के समान बना दिया गया। जिस राजसत्ता को यह जिम्मेदारी दी गयी थी कि वह प्रकृति के स्रोतों का संरक्षण-संवर्धन करे, और इसीलिए उन्हें राष्ट्रीय धरोहर समझा गया। राजसत्ता ने उन्हें राष्ट्रीय सम्पत्ति की गलत समझ के आधार पर उनका अधिग्रहण तथा अधिग्रहण के बाद उन्हें पूंजीवादी कारपोरेट इकाईयों को हस्तांतरित करना शुरू कर दिया।

यह दौर इसलिए शुरू हुआ क्योंकि पूंजी के स्वामी वे लोग हो गये, जिन्होंने पूंजी का निर्माण नहीं किया था। पूंजी के निर्माण के पीछे भी श्रम-शक्ति एवं श्रम की बौद्धिक शक्ति थी। श्रम-शक्ति से जो अतिरेक पैदा हुआ, वह इतिहास के लम्बे कालखण्ड में या तो श्रमिकों की सामूहिक धरोहर हो सकती थी या राष्ट्रीय धरोहर हो सकती थी। पूंजीपतियों का स्वामित्व हर तरह से गलत एवं शोषण आधारित रहा है।

पूंजीवाद का चरमोत्कर्ष यह हुआ कि दुनिया की सभी पूंजी और सभी संसाधन पूंजीवादी बाजार के अंतर्गत आ गये हैं। और श्रम एक श्रेणीबद्ध शृंखला के समान कई स्तरों का हो गया है। श्रमिक, कौशलयुक्त श्रमिक एवं बौद्धिक श्रमिक सभी अपने श्रम, कौशल एवं बौद्धिक कर्म को बेचने को विवश है। श्रम की श्रेणीबद्धता के कारण हम इस गलतफहमी में रहते हैं कि प्रबंधक श्रमिक एवं बौद्धिक श्रमिक श्रम श्रेणी का हिस्सा नहीं हैं। जबकि इन सबके श्रम का अतिरेक भी पूंजीपति के हिस्से में जाता है। मजदूरी एवं अधिक वेतनभोगी के बीच का फर्क गुणात्मक नहीं, केवल मात्रात्मक है। लेकिन बड़ी बात यह हुई है कि श्रमिक वर्ग की श्रेणीबद्धता के कारण श्रमिकों की एकता में भी बाधा पड़ी है।

इसी प्रकार पूंजीवाद के अन्दर का श्रमिक अपने आपको उन-उन उत्पादक श्रमिकों के साथ नहीं जोड़ पाये जो अभी भी प्रकृति प्रदत्त स्रोतों पर श्रम कर परम्परागत उत्पादन प्रक्रिया का अंग हैं। सभी प्रकार के श्रमिकों की व्यापक एकता के अभाव में ही पूंजीवादी शोषण फल-फूल रहा है।

सारी तरह की पूंजी का निर्माण ये तीन प्रकार के श्रमिक ही कर रहे हैं, किन्तु पूंजी पर स्वामित्व पूंजीपति समूह का है।

क्रांति का कार्य पूंजी को पुनः लोक-स्वामित्व के दायरे में लाने का होगा। अतः आज के संदर्भ में क्रांतिकारियों को अपनी रणनीति पर दो दृष्टि से विचार करना होगा।

एक तो यह कि आज सभी प्रकार के श्रमिक, अपने श्रम का मूल्य जिस रूप में भी प्राप्त करते हैं, उस आय से उन वस्तुओं को कम-से-कम खरीदें, जो पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था से आती हैं तथा क्रांतिकारी अपने वैकल्पिक रचना (स्वदेशी) के माध्यम से ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करें, जिसे सभी प्रकार के श्रमिक वर्ग खरीदें। इससे स्वदेशी—लोक स्वामित्व—श्रम प्रतिष्ठामूलक नयी पूंजी का निर्माण होगा, जो वैकल्पिक पूंजी उपयोग व पूंजी निर्माण की व्यवस्था खड़ी करती जायेगी।

दूसरे श्रमिकों को अपने श्रम का जो मूल्य मिलता है, उसके बचत का कोई हिस्सा कारपोरेटों के शेयर खरीदने में न लगायें। लोक स्वामित्व आधारित पूंजी संचय की नयी व्यवस्था खड़ी करनी होगी, जिसके शेयर श्रमिक खरीद सकें। ये शेयर श्रम अंश के दान द्वारा भी एवं बचत के अंश दान द्वारा भी एवं बचत के अंशदान द्वारा भी किये जा सकेंगे।

इन रचनात्मक आंदोलनों को उन व्यापक आंदोलनों के साथ जोड़ना होगा जो श्रम के शोषण एवं संसाधनों के दोहन की नीतियों के खिलाफ देशभर में हो रहे हैं। श्रमिक का सम्मान वापस प्राप्त करने का अभिमान ही श्रमिक-विमर्श का आधार बन सकता है। पूंजी एवं संसाधनों से वंचित श्रमिक को कुछ दिखावटी सुविधा देने की बात बेमानी होगी।

विमल कुमार

गतांक से आगे

जीवन-दान

मेरा निर्णय भावावेश में नहीं

❑ जयप्रकाश नारायण

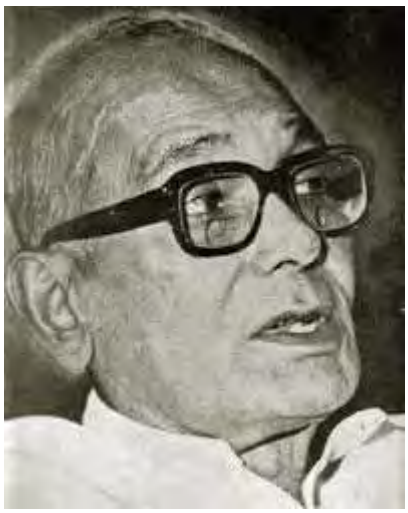

'जीवनदान' का विशेष अर्थ यह है कि जीवनदानियों को विश्वास है कि आज भूदान से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य और नहीं है, अतएव और सब काम इसके अधीनस्थ कार्य ही हैं। (यहां भूदान का अर्थ उसमें सन्निहित सब बातों से हो)। भूदान-आंदोलन में सम्मिलित लोगों में कुछ को छोड़कर शेष को यह दृढ़ विश्वास न था और एक ही लक्ष को साधने की प्रवृत्ति का अभाव दिखायी दिया। यही कारण है कि जीवनदान की पुकार हुई।

राज्यहीन समाज की कल्पना और लोकतंत्र

यहां हमें भूदान आंदोलन के राजनीतिक दर्शन का परिज्ञान होता है। इसका उद्देश्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सरकार पर अधिकार कर उसका प्रयोग करना नहीं है। इससे यह भी सिद्ध है कि इसका उद्देश्य राज्य-सत्ता प्राप्त करने के लिए एक राजनीतिक दल का गठन या स्वयं उसमें परिणत होना नहीं है। इस आंदोलन का उद्देश्य तो जनता को यह समझाना-बुझाना है कि राज्य चाहे या न चाहे, लोगों को अपने जीवन में क्रांति करनी है और उसके जरिये समाज में क्रांति करनी है। इसके अतिरिक्त इसका उद्देश्य उन स्थितियों का भी निर्माण करना है, जिनमें कि लोग दलों तथा संसदों के दखल के बिना अपने मामलों का स्वयं प्रबंध कर सकें। अराजकवाद या साम्यवाद की भांति गांधी-दर्शन में भी अंतत; एक 'राज्यहीन समाज' की कल्पना है।

वर्तमान विश्व में राज्य अपने सर्वसत्ता-धारी रूप में तथा लोक-कल्याणकारी किस्म में भी अधिकाधिक अधिकारों तथा जिम्मेवारियों को ग्रहण करता जा रहा है। कल्याण के नाम पर लोक-कल्याणकारी राज्य में मनुष्य द्वारा शासन-तंत्र का गुलाम बनने का उतना ही खतरा पैदा हो रहा है जितना सर्वाधिकारी राज्य में। धीरे-धीरे प्रविष्ट होने वाले इस पक्षघात को रोकने के लिए जनता को जोरदार आवाज उठानी चाहिए।

यह मानना होगा कि लोक-कल्याणकारी राज्य जनता का सेवक है, क्योंकि जनता ने ही इसे निर्माण किया है। लेकिन इस बात से वस्तुस्थिति में अंतर नहीं पड़ता। लोकतंत्रीय चुनावों की प्रणाली से पांच सौ प्रतिनिधि अठारह करोड़ लोगों की बराबरी, केवल वयस्क व्यक्तियों को गिना जाय तो, कमी नहीं कर सकते। जिस हद तक अठारह करोड़ व्यक्ति अपने मामलों की स्वयं देखभाल करेंगे, उस हद तक राज्य के अधिकार तथा उसके कार्य सीमित रहेंगे और वास्तविक लोकतंत्र चरितार्थ होगा।

साम्यवादी देशों का अनुभव

साम्यवादी देशों का अनुभव यह बताता है कि यदि अविलंब उठाये जाने वाले कदम अंतिम लक्ष्य से मेल नहीं खाते, तो हम ऐसे मुकामों पर पहुंच सकते हैं, जो कि अंतिम गंतव्य स्थान से बिलकुल ही भिन्न है। राज्यहीन समाज का उत्कृष्ट आदर्श सामने रखकर साम्यवादी राजसत्ता के जरिये हर काम करने लगे और इसका यह परिणाम निकला कि राज्य-संस्था हर दिन अधिकाधिक अधिकार हड़पती गयी और राज्य विलीन होने के बजाय सर्वव्यापी राज्य-संस्था प्रकट हुई।

आज से ही प्रारम्भ हो

यही कारण है कि भूदान या सर्वोदय आंदोलन इस बात पर जोर देता है कि यदि हमारा अंतिम उद्देश्य राज्य-निरपेक्ष समाज बनाना है, तो हमें इसी क्षण ऐसी स्थितियां उत्पन्न करनी चाहिए, जिनमें कि लोग अपने ऊपर अधिक से अधिक और राज्य पर कम से कम निर्भर करेंगे। यह कोई नहीं कह सकता कि राज्य कभी पूर्ण रूप से विलीन होगा या नहीं, लेकिन यदि हम अहिंसक लोकतंत्र का आदर्श स्वीकार करते हैं, तो हमें आज ही से इसके लिए कार्य करना प्रारम्भ कर देना होगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जो लोग राज्य के बिना ही काम चलाना चाहते हैं अथवा जो उस पर कम से कम निर्भर रहना चाहते हैं, वे स्वयं नियम तथा अनुशासन से चलने वाले, संयमी और न्यायप्रिय तथा एक-दूसरे से सहयोग करने वाले व्यक्ति होंगे।

इसके साथ मैं यह भी कह दूं कि जब संसार के लोग इस तरह के व्यक्ति होंगे और सरकारें समाप्तप्राय हो जायेंगी अथवा उनके पास न्यूनतम अधिकार होंगे, तब संसार में शांति होगी। सरकारों द्वारा युद्धोन्मूलन की संभावना नहीं। केवल जनता ही, जिसने कि स्वयं अपने को सरकारों की दासता से मुक्त

किया है, युद्धों की समाप्ति कर सकेगी।

राजनीति नहीं, लोकनीति

यह तो भूदान-आंदोलन का राजनीति के प्रति रुख रहा। यहां यह बता देना भी आवश्यक है कि *एक प्रकार से भूदान स्वयं ही बहुत उत्कृष्ट तथा गहन राजनीतिक आंदोलन है। एक आंदोलन, जिसका उद्देश्य मानव तथा समाज में पूर्ण क्रांति करना है, राजनीति-निरपेक्ष नहीं हो सकता। लेकिन इसमें किस प्रकार की राजनीति है, इसका वर्णन मैं ऊपर कर चुका हूं। यह दलों, चुनावों, संसदों तथा सरकारों की राजनीति नहीं, किन्तु जनता की राजनीति है। विनोबाजी के शब्दों में यह 'राजनीति' नहीं, किन्तु 'लोकनीति' है।*

जीवन-दान का अर्थ

हमने आंदोलन के लिए अपना जीवन क्यों अर्पण किया है, यह तभी समझ में आ सकता है, जब कि आंदोलन की व्यापकता की पृष्ठभूमि, उसके क्रांतिकारी और निर्माणकारी स्वरूप, उसके नैतिक तथा मानवीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखा जाये। मैंने जीवन-दान पर उन व्यक्तियों की व्याख्याएं पढ़ी हैं, जिनसे कि इस बारे में अधिक ज्ञान की आशा की जाती थी। लेकिन उन्होंने इसको और किसी निस्वार्थ जीवनार्पण के समकक्ष रख कर इसकी विशेषताओं से इसे वंचित कर दिया है। 'जीवनदान' का विशेष अर्थ यह है कि जीवनदानियों को विश्वास है कि आज भूदान से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य और नहीं है, अतएव और सब काम इसके अधीनस्थ कार्य ही हैं। (यहां भूदान का अर्थ उसमें सन्निहित सब बातों से हो)। भूदान-आंदोलन में सम्मिलित लोगों में कुछ को छोड़कर शेष को यह दृढ़ विश्वास न था और एक ही लक्ष को साधने की प्रवृत्ति का अभाव दिखायी दिया। यही कारण है कि जीवनदान की पुकार हुई। गत तीन वर्षों के अनुभवों ने गांधीजी की क्रांतिकारी विचारधारा तथा कार्यप्रणाली की शक्ति को असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया था। 30 अप्रैल 1954 तक पचीस लाख एकड़ की प्राप्ति का अखिल भारतीय लक्ष्य निर्धारित किया गया था और उसमें आठ लाख एकड़ अतिरिक्त जमीन मिली। यह एक महत्त्वपूर्ण सफलता थी। ***लेकिन यदि गांधीजी तथा विनोबा का संदेश प्रत्येक गांव और प्रत्येक घर में पहुंचाने के लिए पर्याप्त कार्यकर्ता होते और जिन कार्यकर्ताओं ने अपना समय दिया, यदि उनमें से सब ठीक प्रकार के होते और वे लगन तथा एकचित्त से कार्य करते, तो तैंतीस लाख की संख्या आसानी से एक करोड़ तक पहुंच गयी होती। अधिकांश भूदान कार्यकर्ताओं ने कभी तो जोश से काम किया और कभी मंद पड़ गये। उनमें से कई आंदोलन के बुनियादी सिद्धांत नहीं समझ पाये थे।*** बहुतों ने स्वयं भूमि या दूसरी सम्पत्ति का उपयुक्त दान भी नहीं किया था और बहुतों ने इस स्वार्थपूर्ण उद्देश्य से कार्य किया था कि बाद में अपने तथा अपने दलों को फायदा पहुंचा सकेंगे। इस स्थिति को देखते हुए वह एक चमत्कार ही था कि इतनी अल्प अवधि में इतना अधिक कार्य हुआ।

जल्दी कार्य करने की जरूरत

लेकिन ***यदि अहिंसा को हिंसा पर विजय प्राप्त करनी है तो उसे तेजी से कार्य करना चाहिए, नहीं तो घटनाएं उसे पराभूत कर देंगी और हिंसा की बाढ़ में अहिंसा डूब जायेगी। जनता के सामने बहुत गंभीर समस्याएं हैं। यदि अहिंसा उन्हें जल्दी हल नहीं करती, तो इतिहास अहिंसक कार्यकर्ता के लिए चुप नहीं बैठा रहेगा।*** वर्तमान सामाजिक व्यवस्था, जिसमें लालच, स्वार्थ, मानवता का अभाव, अन्याय, शोषण तथा असमानता है, समाप्त होनी ही चाहिए। यदि अहिंसा इस व्यवस्था को जल्दी नहीं बदलती तो हिंसा प्रवेश करेगी ही। यहाँ दूसरी है कि अंत में हिंसा से किसी समस्या का हल न निकलेगा और अन्याय, शोषण, लालच तथा स्वार्थ के एक रूप के स्थान पर दूसरा रूप आ जायेगा। लेकिन तब जनता के यह अनुभव करने से कोई लाभ नहीं होगा। इस बीच अनिष्टकारी शक्तियां समाज को जकड़ लेंगी।

अतएव हममें से कुछ ने ***बोधगया*** में यह अनुभव किया कि प्रत्येक को यह समझने की जरूरत है कि स्थिति की पुकार पर ध्यान देकर तेजी से कदम उठाना आवश्यक है। सब कुछ अनुकूल है; युग की आत्मा हमारे साथ है और यदा-कदा की निराशाओं के बावजूद जनता ने बहुत अच्छा सहयोग दिया है। अभाव तो कार्यकर्ताओं का है। ऐस कार्यकर्ता पर्याप्त संख्या में नहीं, जो कि योग्य हों, लगन से कार्य करें और संपूर्ण रूप से अन्य सब कामों को छोड़ कर इस बड़े आंदोलन के लिए अपना जीवन अर्पण करने को वचनबद्ध हों। इसीलिए जीवनदान का आवाहन हुआ।

लाखों जीवनदाता मिलें

बोधगया में तथा उसके बाद इस आवाहन पर आश्चर्यजनक सफलता मिली। लेकिन यह पर्याप्त नहीं। जो कार्य करना है, वह बहुत प्रचंड है। पांच करोड़ एकड़ भूमि एकत्र करनी है और दान में प्राप्त भूमि का वितरण होना है। भूमिहीनों को ऐसे साधन उपलब्ध कराने हैं, जिनसे कि वे भूमि का उपयोग कर सकें। जिन गांवों में भूदान सफल हुआ है, वहां एक नयी व्यवस्था करनी है। पांच लाख गांवों में ग्रामराज्य कायम करना है। नगरों में सम्पत्ति-दान शूरू करना है तथा अंत में पूंजीवाद को थातीदारी (ट्रस्टीशिप) में बदलना है। इसके सिवा और भी कई काम हैं।

आज मानव आत्म-विनाश की ओर चला जा रहा है। दुनिया भयंकर चट्टान के कगार पर खड़ी कांप रही है। यदि उसे बचाना है तो एकमात्र मार्ग यही है कि भूदान या सर्वोदय के अनुसार उसका पुनर्निर्माण किया जाय। आज अंतर्राष्ट्रीय भूदान की (उसके अधिकतम व्यापक अर्थ में) आवश्यकता है।

यह सारा महान् कार्य हमें पुकार रहा है। मैं इससे अधिक और कोई योग्य कार्य नहीं देखता, जिसको कि हमें सहायता प्रदान करनी चाहिए तथा जिसमें हमें लगन से जुट जाना चाहिए। ***इस देश में करोड़ों लोग हैं। तब क्या इतनी बड़ी जनसंख्या में कम से कम कुछ लाख स्त्री-पुरुष ऐसे नहीं मिल सकते, जो कि इस ऐतिहासिक आंदोलन में कूद पड़ने के लिए अपनी पर्याप्त स्वार्थहीनता, अपने पर्याप्त साहस तथा अपनी पर्याप्त दूरदर्शिता का परिचय दें?*** भावी इतिहास और कम से कम भारतीय इतिहास, इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर कर सकता है।

नौजवानों को आवाहन

ब्रिटिश शासनकाल में जोशीले नवयुवकों ने ऊंचे वेतनों तथा पदों के लालच के बावजूद नौकरियां करने से इनकार कर दिया था। अब हमारे आशाजनक नवयुवकों के लिए नौकरियां ही प्रधान आकर्षण हैं। इसमें कोई हर्ज नहीं। लेकिन उनमें जो अधिक भावनाशील तथा कम स्वार्थी हैं, उन्हें यह अनुभव करना चाहिए कि यद्यपि रोजमर्रा का प्रशासनिक कार्य आवश्यक है, किन्तु उससे एक नये राष्ट्र का निर्माण न होगा। जिन लोगों की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएं हैं,उन्हें यह अनुभव करना चाहिए कि विधान मंडल तथा सरकारों द्वारा भी राष्ट्र-निर्माण नहीं हो सकता। यदि वे ठीक तरह से कार्य करें तो वे सहायता पहुंचा सकती हैं, लेकिन उनसे हानि भी हो सकती है। केवल लोग ही अपने को ऊपर उठा सकते हैं। अतएव लोगों के पास जाना उनके साथ रहना तथा उनको स्वावलंबी बनाने के लिए उन्हें सहायता देना बहुत जरूरी है।

नौजवान अपना-अपना दिल टटोलें। क्या वे एक आरामतलब जिन्दगी चाहते हैं? क्या वे सामाजिक तथा आर्थिक चढ़ा-ऊपरी की स्पर्धा में शरीक होना चाहते हैं, जो कि आखिर में केवल जनता की पीठ पर ही सवार हो पाते हैं? मुझे दृढ़ आशा है कि इस देश में ऐसे पर्याप्त नवयुवक तथा ऐसी नवयुवतियां हैं, जो कि एक महान उद्देश्य के लिए कष्टप्रद तथा कठोर जीवन को अपनाने के लिए तैयार रहेंगे। अब पैरों तले की जमीन खिसक रही है। कल तो फिर बहुत देर हो सकती है।

जीवनदानी संन्यासी नहीं है

जीवनदानियों के बारे में कुछ शब्द कहने की आवश्यकता है। उनसे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे अपना घर बार तथा बीबी-बच्चे छोड़ दें या संन्यासी तथा भिक्षु बन जायं। हम इस दुनिया में रहते हुए ही इसे सुधारना चाहते हैं। लेकिन जीवनदानी से अपेक्षा की जाती है कि वह खूब श्रम करेगा और सादगी से रहेगा। यदि उसके पास भूमि या और कोई सम्पत्ति या आमदनी हो, तो वह भूदान या सम्पत्तिदान में उसका उपयुक्त हिस्सा देगा। यदि उसके पास जीवन-निर्वाह का कोई स्वतंत्र साधन नहीं, तो यह स्वाभाविक है कि उससे वायु-भक्षण की आशा नहीं की जा सकती। यदि उसकी अंतरात्मा की पुकार उसे आंदोलन में कूदने को प्रेरित करती है, तो उसे इस विश्वास के साथ, कि जिस बड़े समाज का वह पूर्ण सेवक है, वह उसे नहीं भूलेगा, बिना किसी शिक्षक के आंदोलन में शामिल हो जाना चाहिए। यह कहने की जरूरत नहीं कि आंदोलन उसकी देखभाल के लिए पूरी कोशिश करेगा। लेकिन उसे एक कठोर तथा सादे जीवन के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि कोई जीवनदानी किसी राजनैतिक दल में है और यह समझता है कि दल की सदस्यता भूदान के सिद्धांत तथा उसके अमल से नहीं टकराती, तो वह सदस्य बना रह सकता है। लेकिन यदि वह किसी अधिकार-पद पर हो, तो उसे वह छोड़ना पड़ेगा और जीवनपर्यन्त वह चुनावों में भाग न ले सकेगा। लेकिन वह अपने विवेकानुसार मतदान कर सकता है।

महत्त्वपूर्ण राजनैतिक प्रयोग

अन्य सारी बातों के अतिरिक्त ***भूदान आंदोलन एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक प्रयोग कर रहा है। उसका उद्देश्य अंततः एक पक्षहीन लोकतंत्र का निर्माण है।*** अभी तो एक संक्रमण कालीन स्थिति है, जिसमें कि विभिन्न दल हैं। अतएव यह आंदोलन प्रत्येक दल के सदस्यों को सर्वोदय के लिए मिलजुल कर कार्य करने का निमंत्रण देता है। इसमें उसके दो उद्देश्य हैं। एक तो वह यह नहीं चाहता कि दल तथा दलों की सदस्यता सर्वोदय की ओर प्रगति करने में बाधक हो। दूसरे, आंदोलन यह सिखाना चाहता है कि विभिन्न राजनैतिक विचारों के रखते हुए भी उन क्षेत्रों में मिलजुल कर कार्य किया जा सकता है, जहां कि दलीय मतभेद नहीं है। प्रत्यक्ष क्रांतिकारी तथा निर्माणकारी आंदोलन के संदर्भ में इस प्रकार मिलजुल कर किया जाने वाला काम तथा सामान्य अनुभव एक नयी राजनीतिक प्रणाली की स्थापना में सहायक हो सकते हैं।

यह स्पष्ट है कि मानवीय तथा सामाजिक उन्नति के लिए अपना जीवन अर्पण करने वाले जीवनदानी को आत्मसुधार के साथ कार्य शुरू करना चाहिए। ***जीवनदानी एक साधारण मृत प्राणी है और उसमें भी दूसरे लोगों की तरह त्रुटियां तथा कमजोरियां होती हैं। लेकिन चूंकि उसने मानव तथा समाज के पुनर्निर्माण के लिए जीवनपर्यंत कार्य करने का व्रत लिया है, अतएव पहले उसे अपना पुनर्निर्माण कार्य करना है। इस प्रकार जीवनदान एक आध्यात्मिक यात्रा का रूप ले लेता है। कम से कम मेरे लिए तो यह इसका सबसे बड़ा आशय है।***

अंत में, मैं उन सब लोगों से, जो जीवनदान की पुकार पर आगे बढ़ना चाहते हैं और इस प्रेरणाप्रद तथा आनंददायक यात्रा में सम्मिलित होने का निर्णय करें, यह प्रार्थना करता हूं कि वे 'श्री धीरेन्द्र मजूमदार, अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ, खादीग्राम, पोस्ट डाढ़ा, वाया-जमुई, जिला-मुंगेर (बिहार)' के पते पर पत्र-व्यवहार करें। श्री धीरेनभाई उन्हें और बातें, जो कि आवश्यक हों, बतायेंगे। ❑

एक चिन्तन

भारतीय किसान समाज व अध्यादेश

❑ राधा भट्ट

सरकारों के अध्यादेशों व नीतियों के मूल कारण, उसकी गहरी अदृश्य जड़ों को खोजने व उसका इलाज करने का हमें प्रयास करना चाहिए। वास्तव में हमने जो आर्थिक विकास का नकल किया हुआ नमूना अपने देश में लागू किया है वह इस देश की इस बदसूरत बेहाली के लिए जिम्मेदार है, इसके चलते देश लगभग पायमाल हो ही गया है। परंतु हमारी सभी सरकारें इस दिशा में आंखें मूंद कर चली हैं और चल रही हैं। इसके लिए सभी राजनीतिक दल एक से अपराधी हैं, क्योंकि कभी एक दल सत्ता पर रहा तो कभी कोई दूसरा, परंतु सभी विकास की उसी दौड़ में दौड़ते रहे, किसी की चाल धीमी थी तो किसी की हड़बड़ाहट भरी तेज थी, किन्तु दिशा नहीं बदली थी।

आज यह जो अध्यादेश है, वह इसी भोगवादी, भौतिकता-प्रधान विकास की दौड़ का एक छोटा कदम है, इस छोटे कदम को भी तोड़ने की जरूरत तो है पर तोड़कर वहीं थम नहीं जाना है। इस सर्वनाशी विकास के मॉडल को ही बदल देना होगा, तब तक चैन नहीं लेना होगा। अध्यादेश के संबंध में एक और भूल हो रही है। अध्यादेश से व्यक्त हो रहे स्पष्ट गहरे संकट के परिप्रेक्ष्य को हाशिये में डालकर उसका राजनीतिकरण किया जा रहा है, सत्तापक्ष और विपक्ष दोनों के ही द्वारा। यह तो और भी भयावह है। इसका उपयोग सत्ता-लोलुप, अपने-अपने वोट बैंक को मजबूत बनाने के लिए कर रहे हैं। उसके आधार पर ये दल जनता, विशेषतः सामान्य किसान, मजदूर श्रमिक वर्ग को भ्रम में डाल रहे हैं, या तो प्रलोभित कर रहे हैं या दहशत में डाल रहे हैं।

हम यहां बैठे हैं मुद्दे को सही परिप्रेक्ष्य में लेकर समझने और उसे सही दिशा में ले जाने के लिए। भूमि के प्रश्न को इस देश के जीवन व्यवहार के धरातल से जोड़कर प्रस्तुत करने के लिए। जमीन भारत के लिए केवल मिट्टी नहीं रही है, यहां कृषकों ने जन-जीवन में भूमि को माता मानकर उसको सर्वोपरि स्थान पर स्थापित किया है और उसके साथ पुत्रवत व्यवहार किया है।

"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्यां"

ऐसे भूमिपुत्रों का निवास स्थान था ग्राम, जिसका स्वरूप था—

"विश्वं पुष्ठं ग्रामे अस्मिन अनातुरम।"

हमारी समग्र जीवन व्यवस्था भूमि माता के आधार पर थी, हमारी इस समग्र व्यवस्था को अंग्रेज शासक नहीं समझ पाये थे, और उनके नक्शे-कदम पर चल रहे हमारे भारतीय शासक भी आज तक नहीं समझ पाये हैं।

मैं वैदिककाल की बात नहीं करती, मैं आज की बात करती हूं। 12 अगस्त, 1996 को धर्मपालजी कहते हैं—

"उड़ीसा में गांव वालों ने बताया कि 52 गांवों की जमीन एक साथ थी। हम इसकी व्यवस्था करते थे। कांग्रेस सरकार ने इसे तोड़ दिया। उनमें से एक वीरेन्द्रपुर गांव में हम गये। ब्राह्मणों का गांव इंग्लैण्ड, इजराईल आदि के गांवों से कम नहीं।"

"सोचा ये बड़े लोगों का टोला है, जाकर मछुआरों के टोले को देखा तो वहां भी वैसा ही था।"

दक्षिण में सामुदायिक गांव थे। 1880 में 5000 से अधिक सामुदायिक गांवों में 1700 संपूर्ण सामुदायिक 1500 में जमीन की सम्मिलित मालिकी, धर्मपालजी बताना चाहते हैं कि इस सामुहिकता में समृद्धि का राज भी छिपा था और वह थी पूर्ण समृद्धि। अंग्रेजी शासकों ने व्यक्तियों के अधिकार को अधिक महत्त्व देकर उसे सुनिश्चित करने के लिए सामूहिकता को तोड़कर भूमि पर व्यक्तिगत मालिकी की व्यवस्था को ही विकास माना। पहले गांव कर्ज चुकाने और लगान जैसी सामूहिक जिम्मेवारी स्वयं निभाता था। अब वह बोझ एक व्यक्ति यानी किसान पर आ गया। न चुका सका तो...***मृत्यु को वरण करने के लाखों उदाहरण आज के विकसित आधुनिक भारत में गिनाये जा सकते हैं। 'सामूहिक मिल्कियत' का गांव एक अमोघ कवच था, जिसमें किसान और उसकी पालनहारी जमीन दोनों सुरक्षित थे। जिस तरह ब्रिटिश शासन ने इस देश के उस सुरक्षित, सुसज्जित ताने-बाने को तोड़ा और यहां के किसानों व उसके समाज को गुलाम बनाया, उसी प्रकार अब हमारी वर्तमान सरकार द्वारा लाये गये 'भूमि अधिग्रहण अध्यादेश' द्वारा गांव व किसान का यह अमोघ कवच चूर-चूर होने वाला है क्योंकि इस अध्यादेश ने गांव की रही-सही सामूहिकता को सिरे से अस्वीकार कर दिया है। भूमि अधिग्रहण के लिए ग्रामवासियों के 70 प्रतिशत लोगों की तो दूर स्वयं उस भूमि पर जीवन जी रहे हैं किसान की भी स्वीकृति लेने की आवश्यकता नहीं मानी गयी है।*** भूमि अधिग्रहण कानून 2013 कम से कम किसान और गांव से पूछने की जरूरत तो महसूस करता था, यद्यपि वह भी अपूर्ण था।

गांव की स्थाई इकाई ग्रामसभा के

अमृत-कण
प्रयोग का परिणाम क्या होगा, नहीं जानता

❑ गांधी

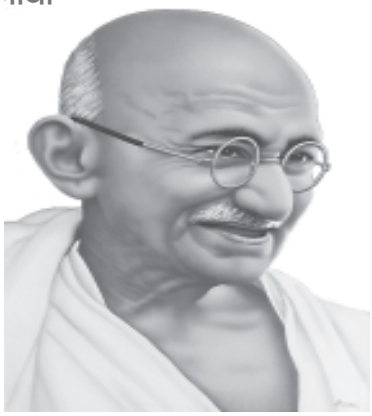

...शासन-तंत्र से बाहर रह कर अहिंसावादी लोग सत्ता पर असर डाला करें, यह काफी है। मानो कि सत्ता विरोधियों के हाथ में है, तो भी अहिंसावादी उनसे काम ले सकते हैं। कांग्रेस में ही अपने से मतभेद रखने वालों के हाथ में सत्ता है, तो भी वही परिणाम लाया जा सकता है। यही तो अहिंसा की विशेषता है।...

...यह मानना नास्तिकपन और वहम है कि बहुसंख्यक की बात अल्पसंख्यक को माननी ही चाहिए। ऐसी मिसालें हजारों मिलेंगी, जिनमें बहुतों की कही हुई बात गलत और थोड़ों की कही हुई बात ही सही साबित हुई है।...

...कार्लाइल ने पार्लियामेंट को 'दुनिया का बकवासखाना' कहा है। जो जिस दल का सदस्य होता है, वह आंख मूंदकर उसी को अपना वोट देता है, देने को मजबूर है। कोई इस नियम का अपवाद बन जाय, तो समझ लीजिए कि उसकी मेम्बरी के दिन पूरे हो गये। जितना समय और पैसा पार्लियामेंट बरबाद करती है, उतना समय और पैसा थोड़े-से भले आदमियों को सौंप दिया जाय, तो राष्ट्र का उद्धार हो जाय। *पार्लियामेंट तो जनता का एक खिलौना मात्र है, उसके मनबहलाव की चीज है, जिस पर उसका बहुत पैसा खर्च हो जाता है।...*

...अहिंसा का पुजारी उपयोगितावाद (बड़ी-से-बड़ी संख्या का ज्यादा-से-ज्यादा हित) का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो ''सर्वभूतहिताय'' यानी सबके अधिकतम लाभ के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में मर जायेगा। इस प्रकार वह इसलिए मरना चाहेगा, जिससे दूसरे जी सकें। दूसरों के साथ-साथ वह अपनी सेवा भी आप मर कर करेगा। सबके अधिकतम सुख के अंदर अधिकांश का अधिकतम सुख भी मिला हुआ है और इसलिए अहिंसावादी और उपयोगिता-वादी अपने रास्ते पर कई बार मिलेंगे, किन्तु अंत में ऐसा अवसर भी आयेगा, जब उन्हें अलग-अलग रास्ते पकड़ने होंगे और किसी-किसी दिशा में एक-दूसरे का विरोध भी करना होगा। युक्ति-युक्त न बनने के लिए उपयोगिता-वादी अपने को कभी बलि नहीं कर सकता। अहिंसावादी हमेशा मिट जाने को तैयार रहेगा।...

...क्यूरी ने जब रेडियम की शोध की थी, तो पहले उनके पास रेडियम प्रत्यक्ष नहीं आ गया था। उनके प्रयोगों से पता चल गया था कि रेडियम जैसी कोई चीज है सही, मगर जगत कहता था, ''जब तक तुम रेडियम हमारी हथेली पर रख नहीं देती, उसके लक्षण और गुणों का ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर सकती, तब तक हम नहीं मानेंगे।'' सो वह काम करती गयी। आखिर थोड़ा-सा रेडियम उन्होंने तैयार किया, उनके गुणों की भी शोध की। तब जगत ने माना। पीछे दुनिया को उसी चीज का गुणाकार करके आवश्यकतानुसार रेडियम तैयार कर लेना पड़ा। वही बात अहिंसा के साथ भी लागू होती है। जगत् के सामने जब तक एक संपूर्ण प्रयोग नहीं आ जाता, तब तक उसे वह शंका की दृष्टि से देखेगा। शंका रखने का जगत् को हक है। मैं इस प्रयोग को पूरा करने का प्रयत्न कर रहा हूं। परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं जानता। ❑

अस्तित्व को यह अध्यादेश एक झटके में समाप्त कर देना और केवल व्यक्ति को सामने रखकर उसे दोगुने मुआवजे व नौकरी का प्रलोभन देकर जमीन छीन लेना इस देश के लिए एक खतरनाक दुःस्वप्न है। निश्चित ही अकेले-अकेले किसान अपनी समाजशक्ति को खोकर टूट जायेंगे और भारत सरकार के गुलाम बन जायेंगे, भारत सरकार कॉरपोरेटोक्रेसी की गुलाम होगी, और कॉरपोरेट्स अमेरिका के गुलाम होंगे। अमेरिका के आर्थिक गुलाम होने का अर्थ है, अपना स्वत्व, सृजन, संस्कृति, समझ, स्वाभिमान, आत्मविश्वास सब लुटा कर जीना अन्यथा मर जाना। भारत के लिए इन अध्यादेशों में ऐसे दूरगामी परिणाम निहित हैं।

आज छोटे या मध्यम किसानों के परिवार अपनी रोटी के लिए सरकार पर निर्भर नहीं है परंतु ज्यों ही उनकी जमीनें कॉरपोरेट्स के हवाले होती हैं वे सड़क पर आ जायेंगे। क्या सरकार उन सभी अशिक्षित, अर्धशिक्षित करोड़ों को नौकरी दे सकती है? फिर वे खेती से जुड़े खेत मजदूर व कारीगर कहां जायेंगे? यह देश अपने जी.एन.पी. बढ़ाने वाले विकास के लिए उन श्रमशील, स्वावलम्बी नागरिकों को बेघर करेगा? क्या यही होगा आजाद भारत देश, और उसकी आजाद जनता?

गांधी ने कहा था, ***''मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब आदमी भी महसूस करे कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्त्व है।''***... किन्तु यहां तो गांधी के नाम की आड़ लेकर किसान, मजदूर, गरीब, श्रमशील आवाम की आवाज को घोंट देने वाले कानून बनाने की जद्दोजहद करने वाली घातक राजनीति अपने अध्यादेश को झुकाना नहीं चाहती। इस घातकता को समाज के सामने पूर्ण स्पष्टता से रखना होगा, अन्यथा भूमि के ऊपर की जा रही राजनीति जनता की स्वायत्ता को दलदल में धँसा देगी।

भूमि समस्या के हल के लिए किये गये प्रयासों का एक उज्ज्वल इतिहास हमारे साथ

है। ***विनोबा जी के नेतृत्व में 14 वर्षों तक चला भूदान ग्रामदान एक करुणामूलक आंदोलन था, जिसने सरकार के कानून से भी बड़ा काम किया था। भूदान आंदोलन में 47,63,566 एकड़ भूमि भूमिवानों ने भूमिहीनों के लिए दी थी, जिसमें से 24,44,112 एकड़ भूमि, भूमिहीनों को बांटी गयी थी। इसके साथ आया था सामूहिकता यानी भूमि व सभी प्राकृतिक संसाधनों की सामूहिक माल्कियत का कदम यानी 'ग्रामदान'।*** इसके अंदर 1,40,000 ग्राम शामिल हुए, जिसमें गांव के प्राकृतिक संसाधनों को बाहरी लूट से बचाने का एक मजबूत सुरक्षा घेरा था। वह था सभी निर्णय सर्वसम्मति से करना तथा जमीन को विक्रय की वस्तु नहीं मानना। गढ़चिरौली (महाराष्ट्र) जिले के नक्सली हिंसा वाले माहौल के बीच मैढ़ा गांव आज भी ग्रामदान की सामूहिक मिल्कियत का नमूना है, जिसने लम्बे संघर्ष के बाद 2013 में स्वशासन और अपने वन एवं वनोपज का अधिकार आज के प्रचलित कानूनों के अंतर्गत प्राप्त किया है। मेंढ़ा जैसे मजबूत गांव की तरह देश का हर गांव हो सके, ऐसी नीतियों व कानून सामने लाने चाहिए। गांव मजबूत बनेंगे तो देश समृद्ध व अखण्डता को कोई छू नहीं पायेगा।

अंग्रेज ने गांवों की सामुदायिक भूमि मिल्कियत को तोड़कर किसान को अकेला खड़ा कर दिया था, अपने संघर्षों को झेलने के लिए। लोग कहते हैं वर्तमान सरकार ने अंग्रेज सरकार के 1890 के जैसा भूमि अधिग्रहण अध्यादेश दिया हे, पर मैं मानती हूं कि यह सरकार गांव व किसान को तोड़ने में अंग्रेज सरकार से एक कदम और आगे है। क्योंकि इसने किसान की सामूहिक ताकत को तो दुर्बल किया ही है किसान की जमीन छीनने के, जमीन की लूट करने को कानून का बाना पहना दिया है। क्या इसे देश का बृहत्समाज स्वीकार करेगा?

आज बाजारवाद को विकास मानकर चल रही हमारी नीतियां जमीन को 'कमोडिटी' बना चुकी हैं और इन्सानी चरित्र की सबसे निम्नवृत्ति 'लोभ' को प्रोत्साहन देकर जमीन की दुगुनी, तिगुनी या चौगुनी कीमत देने का प्रस्ताव रखती है। ***जमीन किसान की अन्नदाता तो है ही वह उसकी इज्जत है, उसकी हैसियत भी है और उसकी पीढ़ी दर पीढ़ी का लगाव भी है, क्या प्रतिदिन घटने, उड़ने व अस्थिर कागज के नोट ऐसी अमूल्य भूमि का मूल्य बन सकते हैं?*** मैंने देखा है जमीन के बदले नोट लेने वाले किसान चार साल में ही पैसे पैसे के मुहताज हो गये थे, जबकि जमीन वह स्थाई पूंजी है जो पीढ़ियों तक स्थायित्व देने वाली है।

यह भूमि अधिग्रहण अध्यादेश देश के 70 प्रतिशत उत्पादक व देश को पालने वाले समाज को अस्थिर करके उन्हें अपनी जड़ों से उखाड़ देना चाहता है। जिन गांवों को गांधीजी ने देश की 'रक्षा रेखा' मानकर कहा था, 'गांव बचेगा तो देश बचेगा' उन्हीं गांवों को देश के नक्शे से लुप्त कर देने की साजिश रची जा रही है। अध्ययन के अनुसार विकास के नाम पर पहले ही निन्यानबे हजार गांव देश के नक्शे से गायब हो चुके हैं। अमीर को अधिक अमीर और गरीब को और अधिक गरीब करने वाले इस अमानवीय हिंसक विकास की बलिवेदी पर देश के किसान को चढ़ाना। इस देश का सुनिश्चित दुर्भाग्य होगा।

आप भूमिहीन, वंचित और किसानों के बीच काम करने वाले साथी हैं, अतः देश के सामने उत्पन्न हुई, इस विषम स्थिति पर विमर्श करके भावी रणनीति को बनायेंगे, जिससे भारत अपने भारतीय स्वरूप का सर्वोत्तम उदाहरण पेश कर आज के विकास को जवाब दे सके।

अंत में गांधी का जंतर याद दिलाना चाहती हूं, जो गांधीजी ने आजाद भारत की पहली सरकार को दिया था, अतः आज की सरकार पर भी लागू होता है। यह सरकार और हम सब इस जंतर की अंतर्भावना के सामने इस भूमि अधिग्रहण अध्यादेश का मूल्यांकन करें।

तुम्हें मैं एक जंतर देता हूं, जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हॉवी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ—

''जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो ओर अपने दिल से पूछा कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा? क्या उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उसे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा? जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है? तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।'' *—मोहनदास करमचंद गांधी*

मैं मानती हूं कि अध्यादेश के संदर्भ में एक-एक किसान को भी सामने रखकर देखें, परंतु कियान समाज को नकारने से किसान व गांव का कितना ह्रास होगा, यह भी देखें, अध्यादेश उस भूमिहीन खेत-मजदूर, उस साधनहीन गरीब जो खेत की टूटी बालियां बिनता है, उसको भी अपनी नजरों में रखिये।

गांव व किसान, दोनों को मजबूत बनाना है तो खेती-किसानी से जुड़े सारे प्राकृतिक संसाधन, जल-जंगल और जमीन तथा सभी लघु खनिज गांव के स्वयं अधिकार में होना चाहिए। जैसे मैंढ़ा गांव में है।

किसान और कम्पनी को राष्ट्र-नीतियों में बिल्कुल बराबरी का दर्जा देना चाहिए, वही सुविधाएं, सही सहायताएं और वही प्रतिष्ठा दी जायें। ताकि देश को जीवित रखने वाला किसानी का कार्य एक प्रतिष्ठित व करने जैसा पेशा बन सके—नई पीढ़ी उसमें आजीविका के साथ आनन्द व आदर भी पा सके। ग्राम सभाएं संपूर्ण जनसंख्या के सभी बालिग स्त्री-पुरुषों को लेकर बनी हुई स्वायत्त संस्था बनायी जायें। जिसके हाथों में गांव व जल, जंगल, जमीन व लघु खनिज आदि का प्रबंधन व नियमन हो।

इसी दिशा में सृजनात्मक सुझाव सरकार को भी दिये जायें। ❑

इतिहास

भूदान, ग्रामदान और भूमि-अधिग्रहण

❑ अशोक शरण

15 अगस्त, 1947 को देश तो स्वतंत्र हो गया परंतु करोड़ों लोगों को वास्तविक आजादी नहीं मिली। गांधीजी कहते थे केवल अंग्रेजों के देश छोड़कर चले जाने से स्वराज्य नहीं आयेगा, असली स्वराज्य तभी आयेगा जब हमारे गांव स्वावलंबी होंगे, हर हाथ को काम मिलेगा, कोई बेरोजगार नहीं होगा। देश स्वतंत्र होने के सात माह के मध्य गांधीजी शहीद हो गये। देश का नेतृत्व और लोग इस आकस्मिक घटना से हतप्रभ थे।

सरकार की योजना से अंतिम आदमी को लाभ दिखायी नहीं दे रहा था। करोड़ों भूमिहीन, मजदूर, किसान, आदिवासियों को देश की आजादी का अर्थ समझ नहीं आ रहा था, उनकी स्थिति यथावत थी। उसमें दूर-दूर तक कोई सुधार दिखायी नहीं दे रहा था। गांधीजी के द्वितीय सत्याग्रही पंडित जवाहरलाल नेहरू तो देश के प्रधानमंत्री बन गये। उनके सामने देश चलाने की समस्या थी। उस समय देश राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे, सुरक्षा, आंतरिक व्यवस्था, डेढ़ करोड़ आबादी का एक देश से दूसरे देश में पलायन, शरणार्थियों को बसाना, दस लाख लोगों का कत्लेआम आदि समस्याओं से जूझ रहा था।

ऐसे समय में गांधीजी के प्रथम सत्याग्रही संत विनोबा भावे भारत के क्षितिज पर भूदान आंदोलन के माध्यम से ऐसे उभरे कि उनका यह अनूठा प्रयोग विश्व भर में चर्चित हुआ। विश्व में ऐसा प्रयोग कहीं नहीं हुआ, जहां लोगों ने लाखों एकड़ जमीन दान में दी हों, इतना ही नहीं अपनी भूदान यात्रा के दौरान उन्होंने पाकिस्तान सरकार से, उस समय के पूर्वी पाकिस्तान में यात्रा की अनुमति मांगी, जो उन्हें प्राप्त हुई। उत्तर-पूर्व में आसाम की भूदान यात्रा की वापसी में वे पूर्वी पाकिस्तान (अब बंग्लादेश) गये, जहां उन्हें सोलह दिनों की यात्रा में 176 बीघा भूमि दान में प्राप्त हुई, जिसे उसी समय वहां बांटा गया। ऐसा क्या देखा था गांधीजी ने इस विनायक में की उन्होंने उसे 17 अक्टूबर 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह का पहला सत्याग्रही चुना और विनोबा नाम भी दिया।

देश की बहुसंख्यक आबादी के पास जमीन नहीं थी। भूमि पर मुट्ठी भर लोगों का अधिकार था। इसका नतीजा सामने आने लगा। तेलंगाना को लेकर साम्यवादी हिंसक घटनाएं सामने आने लगीं। ऐसे समय में लोगों को विनोबा भावे में उम्मीद की किरण दिखायी देने लगी। सर्वोदय समाज ने इस इलाके के शिवरामपल्ली गांव में अपना सम्मेलन करने का फैसला किया। विनोबाजी इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए पैदल निकले। सम्मेलन से वापसी के दौरान पोचमपल्ली गांव में बेजमीन दलित समुदाय के लोगों ने विनोबाजी के सामने जीवन की मांग रखी जो उनकी आजीविका के लिए उपयुक्त हो। चर्चा के दौरान उस गांव के श्रीरामचन्द्र रेड्डी ने 100 एकड़ जमीन देने की बात कही। इसी से प्रेरित होकर आचार्य विनोबा ने भारतीय जनमानस में दान-वृत्ति के महत्त्व को समझकर भूदान की योजना बनायी। 18 अप्रैल, 1951 को आंध्र प्रदेश के इस गांव की घटना ने देखते-देखते एक आंदोलन का रूप ले लिया। वर्धा आश्रम लौटने तक 58 दिनों में करीब 200 गांव में 12201 एकड़ जमीन दान में मिली। हैदराबाद प्रांतीय सरकार ने इस भूमि वितरण के लिए नियम भी बनाये। धीरे-धीरे अन्य प्रांतों ने भी भूदान की भूमि वितरण के लिए अपने-अपने राज्यों में भूदान बोर्ड का गठन किया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारूप बन रहा था। नेहरू ने योजना आयोग के साथ विस्तृत चर्चा करने के लिए विनोबा भावे को निमंत्रण दिया। विनोबा आश्रम से दिल्ली के लिए 12 सितंबर 1951 को पैदल ही निकले। इस बार भूदान को व्यापक करने की योजना थी। विनोबा रास्ते भर अपनी बात रखते गये, जमीन मिलती गयी। 13 नवंबर, 1951 को विनोबा दिल्ली पहुंचे, तब तक 19436 एकड़ भूदान मिल चुका था।

आचार्य विनोबा भावे ने 13 वर्षों तक देश में लगभग 80 हजार किलोमीटर पैदल घूम-घूमकर लोगों से जमीन दान में मांगी, जिससे 47,63,936 एकड़ जमीन प्राप्त हुई, जिसमें अब तक 25 लाख एकड़ जमीन बंट चुकी है। जबकि सीलिंग द्वारा पचास लाख एकड़। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। ***हिंसा के माध्यम से कितनी जमीन बंटी, कानून के माध्यम से कितनी जमीनें बंटी! तेलंगाना में इतनी हिंसा हुई फिर भी एक एकड़ जमीन किसी को नहीं मिली। नक्सलवाड़ी में इतना खून खराबा हुआ फिर भी किसी को जमीन नहीं मिली, इस तरह जमीन के बंटवारे में हिंसा और कानून की अपेक्षा करुणा और दया का मार्ग अधिक सफल हुआ है।***

गांधीजी के ग्रामस्वराज्य की परिकल्पना को पूर्ण करने के लिए भूदान की भांति ग्रामदान का विचार भी सामने रखा गया, जिसकी कल्पना इस प्रकार थी—

1. गांव में कम से कम 75 प्रतिशत जमीन मालिक अपनी मालिकी गांव-समाज को समर्पित करे। गांव-समाज यानी गांव के सभी बालिग स्त्री-पुरुषों से बनी ग्रामसभा। गांव को इस तरह समर्पित जमीन ग्रामसभा के नाम रहेगी।

2. वह जमीन गांव की जमीन का कम से कम 51 प्रतिशत हिस्सा हो।

3. गांव के कम से कम 75 प्रतिशत लोग ग्रामदान को मान्य करें।

4. गांव को समर्पण की हुई हर एक जमीन मालिक की जमीन का 5 प्रतिशत हिस्सा निकाल कर भूमिहीनों में बांटा जाये।

5. शेष 95 प्रतिशत जमीन मूल मालिकों तथा उनके वारिसों के पास रहेगी। उसका हस्तांतरण केवल गांव के अंदर ग्रामसभा की अनुमति से होगा।

6. गांव के लोग अपनी आय या उत्पादन का 2.5 प्रतिशत हिस्सा नियमित रूप से ग्रामसभा को दें, जिसका ग्राम कोष बने। इसका उपयोग गांव के जरूरतमंदों की मदद के लिए, गांव के आर्थिक विकास के लिए या अन्य उपयोगी सार्वजनिक कार्यों के लिए हो।

इन शर्तों को मान्य करने पर ग्रामदान माना जायेगा। ग्रामदान की इस कल्पना के आधार पर देश में ग्रामदान की संख्या बढ़ने लगी। कानून वैधता देने के लिए अनेक प्रदेशों ने अलग-अलग कानून बनाये। 1969 में राजगीर सर्वोदय सम्मेलन के समय आंदोलन अपने चरम पर था। बिहार के 60065 गांव ग्रामदान के अधीन आ चुके थे और देश में ग्रामदानों की संख्या 137208 तक पहुंची थी। ग्रामदान कानूनों के तहत 3932 ग्रामदान आज भी हैं और उन्हें सक्रिय करने की चेष्टा हो रही है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि एक संत के निवेदन पर देश में लगभग 47 लाख एकड़ जमीन दान में मिल जाती है, परंतु भूमि अधिग्रहण अधिनियम के माध्यम से जिसमें पर्याप्त मुआवजे का भी प्रावधान है, लोग अपनी जमीन देने के लिए तैयार नहीं हैं। यह लगभग इतनी जमीन है जितनी सीलिंग के माध्यम से बांटी गयी। इसका तात्पर्य यह है कि सरकार की मंशा में लोगों को कहीं न कहीं खोट दिखायी देता है। जमीन के मामले में वह उस पर विश्वास नहीं करना चाहती। सरकार विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण करती है और फिर उस पर मुनाफा कमाती है। ***कृषि योग्य उपजाऊ भूमि किसानों के हाथ से निकल कर उद्योगपतियों या बड़े-बड़े भवन निर्माताओं के हाथ में पहुंच जाती है, जिससे वह अंधाधुंध पैसा कमाते हैं। उद्योगपति किसानों से जमीन खरीद कर आगे अत्याधिक मुनाफे पर लीज पर देते हैं। किसान अपने को ठगा-सा महसूस करता है। सरकार ऐसी नीति क्यों नहीं बनाती कि भूमि पर मालिकाना हक किसानों का ही बना रहे और वह उसे लम्बी अवधि के लिए लीज पर दे सके। जब कंपनियों को किसान की भूमि पर सड़क बनाकर टोल टैक्स के माध्यम से वर्षों तक अंधाधुंध मुनाफा कमाने की अनुमति दी जाती है तो उस कमाई का कुछ हिस्सा किसानों को क्यों नहीं दिया जा सकता। यह नौकरशाहों, राजनीतिज्ञों, उद्योगपतियों और भूमाफियाओं का एक ऐसा गिरोह है जो किसानों की भूमि हथिया कर उससे अंधाधुंध कमाई करता है।***

पूंजी के केन्द्रीकरण की जो नीति सन् 1991 में अपनायी गयी थी, वह आने वाली सरकारों ने और तेजी से लागू किया। इसमें किसानों की जमीन का अधिग्रहण, ग्राम स्तर पर लघु उद्योगों को नष्ट होने देना तथा प्राकृतिक स्रोतों एवं संसाधन पर कब्जा करना शामिल है ताकि सदियों से परम्परागत समुदाय जो इन स्रोतों, संसाधनों से जुड़े थे, उन्हें इनसे बेदखल कर दिया जाये। यह एक सोची-समझी साजिश है, जिसके तहत किसान या तो खेतीबाड़ी छोड़कर शहर की ओर पलायन कर रहे हैं या आत्महत्या कर रहे हैं। एक अनुमान के अनुसार पिछले 17 वर्षों में तीन लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं।

पिछले कुछ वर्षों में सरकार की इन नीतियों के खिलाफ विभिन्न संगठनों द्वारा आंदोलन किये जा रहे हैं। एकता परिषद और साथी संगठनों द्वारा किये गये जन सत्याग्रह 2012 के परिणामस्वरूप 11 अक्टूबर 2012 को आगरा में भारत सरकार के तत्कालीन ग्रामीण विकास मंत्री श्री जयराम रमेश और जन सत्याग्रह के श्री पी. वी. राजगोपाल के मध्य भूमि सुधार के लिए दस सूत्री समझौता हुआ था, जिसके आधार पर राष्ट्रीय भूमि सुधार नीति तथा आवासीय भूमि का अधिकार कानून का मसौदा तो तैयार किया गया, परंतु कानून बनाते समय उसमें सभी बातों का समावेश नहीं किया गया। अब अध्यादेश के माध्यम से जो कानून बनाने की बात कही जा रही है उसमें तो भूमिहीनों और किसानों के अधिकार को और गौण कर दिया गया है। भूमि अधिग्रहण केवल उन्हीं लोगों को लाभ पहुंचाता है, जिनके पास पहले से ही धन उपलब्ध है। गरीब और किसानों की बात कोई नहीं करता। जो कुछ थोड़ी भूमि उनके पास बची है उस पर भी उद्योगपतियों, भवन निर्माताओं, सरकारों की गिद्ध दृष्टि है।

विनोबा भावे ने भूदान के माध्यम से सहज ही भूस्वामियों से लाखों एकड़ जमीन दान में प्राप्त कर ली। इसके उद्देश्यों के प्रति किसी के मन में कोई संशय नहीं था। अतः सरकार को चाहिए कि यदि विकास और भूमिहीनों के लिए जमीन चाहिए तो उसके उद्देश्य पारदर्शी तरीके से स्पष्ट करे। किसानों के हितों को ध्यान में रखते हुए भूमि अधिग्रहण कानून बनाये। वास्तव में देश में भूमि वितरण कानून बनाये जाने की आवश्यकता है ताकि भूमिहीनों, मझोले और सीमांत किसानों को भूमि मिल सके और उनके पास जो भूमि बची है वह सुरक्षित रह सके। देश के सभी आवासहीन परिवारों को आवासीय भूमि का अधिकार देने के लिए 'राष्ट्रीय आवासीय भूमि अधिकार गारंटी कानून' घोषित करे। ग्रामदानी गांवों के विकास के लिए विशेष योजना बनाकर गांवों के विकास में योगदान करें। वास्तव में जन प्रतिनिधियों द्वारा गांवों को गोद लिये जाने की बात हो रही है, उन्हें ग्रामदानी गांव को अपनाना चाहिए। स्वच्छ गांव, स्कूल, सड़कें, ग्रामोद्योग आदि को विकसित करना चाहिए ताकि गांव से शहर की ओर आबादी का पलायन भी रुक सके। ❑

दस्तावेज

1 मई, श्रमिक दिवस पर विशेष

मजदूर, धरती और औरत

❑ अशोक मोती / बजरंग सिंह

छात्र-युवा संघ वाहिनी और बोधगया का भूमि-संघर्ष

गया की भूमि एक 'तपोभूमि' है, जहां भगवान बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त हुआ। चाहे संत विनोबा का 'भूदान-यज्ञ' आंदोलन के लिए 'करो या मरो' की घोषणा के साथ इस तपोभूमि में प्रवेश हो या इसी ऐतिहासिक आंदोलन को व्यापकता देने के उद्देश्य से कट्टर मार्क्सवादी से गांधीवादी बने जयप्रकाश का 'जीवन-दान' और 'सम्पूर्ण क्रांति' के प्रणेता लोकनायक जयप्रकाश की 'छात्र युवा संघर्ष वाहिनी' का सम्पूर्ण क्रांति के अगले चरण के रूप में 'जो जमीन को जोते-बोये, वही जमीन का मालिके होये' के नारे के साथ गया-प्रवेश, इन सभी अहिंसक प्रयोगों की भूमि गया की ही तपोभूमि रही।

प्रस्तुत है इन प्रयोगों में से एक 'बोधगया के भूमि-संघर्ष' की गाथा। **–कार्य. सं.**

बोधगया प्रखंड पर संघर्ष वाहिनी का प्रथम प्रदर्शन : 8 अप्रैल, 78

बोधगया में एक शंकराचाय्र मठ है, इस मठ की जमीन गया जिले के 6-7 प्रखंडों और मुंगेर जिले के कुछ गांवों में है। 18 धार्मिक ट्रस्टों के नाम पर मठ के पास 1600 एकड़ जमीन के अलावा सैकड़ों नामों पर 10 हजार एकड़ के करीब बेनामी, फर्जी और गैरमजरूआ जमीन भी है।

गया जिले के इन प्रखंडों में लगभग 50-55 फीसदी लोग बेजमीन या एक एकड़ से कम रखने वाले हैं। लगभग 40-45 फीसदी परिवार 10 एकड़ के अंदर की जोत रखने वाले हैं और लगभग 5 फीसदी 15 एकड़ से अधिक जमीन रखने वाले हैं। जिन गांवों में मठ की जमीन है वहां लगभग 50 फीसदी लोगों के पास 30 डिसमिल तक, 30 फीसदी लोगों के पास 30 डिसमिल से एक एकड़ तक, 15 फीसदी लोगों के पास 1 एकड़ से 5 एकड़ तक और पांच फीसदी के पास 10 एकड़ से ज्यादा जमीन है।

मठ है क्या : मठ के मैनेजर हैं जयराम गिरि। यह बिहार के विधायक भी रह चुके हैं और मंत्री भी। अभी धनसुख गिरि महंत हैं। मठ में कौन लोग पल रहे हैं यह जरा ध्यान से देखने पर मठ का चेहरा साफ हो सकता है—1. दीनदयाल गिरि, जिन पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता चूरामन माली की हत्या का आरोप है। 2. गोपाल सिंह, जो हत्या के मुकदमे में दस साल की सजा भुगत चुके हैं। 3. गिरिजा सिंह, जो हत्या के मुकदमे में 5 साल की सजा प्राप्त कर चुके हैं। 4. कुलदीप सिंह, जिसने जयराम गिरि के आदेश पर सोनपुर मंदिर को लूटा था। ये तो कुछ नाम हैं, ऐसे ही बहुतेरे लोगों की बदौलत मठ चल रहा है। मठ का नियम है जो परिवार छोड़कर, सिर मुड़ाकर मठ में ही रहे वही मुड़िया (संन्यासी) हो सकता है। पर मठ के बहुत सारे संन्यासियों का अपने गांव में परिवार है। लोग तीर्थयात्रा के नाम पर साल में दो तीन महीना घर पर टिकते हैं।

जागा जोतने वाला : शिवराजपुर (बोधगया) और गोसाई पेसरा (बाराचट्टी) में बेजमीन हरिजनों को तीस-तीस साल की बंटाईदार से हटाया गया है। दूसरी ओर मैनेजर जयराम गिरि किसानों से पैसा लेकर उन्हें जमीन पर कब्जा दे रहे हैं। मठ की जमीन की रजिस्ट्री बंद होने के बावजूद, अभी तक बहुआरा (थाना जमुई, जिला-मुंगेर) से छत्तीस हजार, कटोरवा (बोधगया) से पैंसठ हजार, मस्तीपुर (बोधगया) से पंद्रह हजार, महुडर (बोधगया) से पंद्रह हजार, लालगंज (मोहनपुर) से पैंतालीस हजार तथा गोसाई पेसरा (बाराचट्टी) से बारह हजार रुपये किसानों से लिया जा चुका है। पैसा लेकर जमीन पर कब्जा देने का यह सिलसिला कुछ दिनों से तेज हुआ है। कारण मठ को अब अहसास होने लगा है कि जोतने वाला जमीन पर अपना अधिकार जताने के लिए तैयार होने लगा है। ***8 अप्रैल 1978 से छात्र युवा संघर्ष वाहिनी यहां काम कर रही है। बाराचट्टी, मोहनपुर, शेरघाटी और बोधगया प्रखंड में मठ किसानों से मजदूरों को लड़ाना चाहता है।***

घटतौल : मजदूरों को नाश्ता सहित मजदूरी में कुछ साढ़े चार सेर (कच्ची) अनाज दिया जाता है। बटखरे के हिसाब से अनाज ढाई किलो होना चाहिए। पर वह होता

डेढ़ किलो ही है। चकला-जयरामपुर (शेरघाटी) में तो सूखी तीन मजूरी मिलती है। नाश्ता में धान का आधा सेर (कच्ची) सत्तू मिलता है जिसमें धान का छिलका भी पीसा होता है। मठ की जमीन बटइया पर जोतने वाले को उपजी फसल का 6 आना ही मिलता है, बाकी दस आना मठ को देना पड़ता है। कानूनन दस आना बटाईदार को और छह आना मठ को मिलना चाहिए था। अब तो बटाईदार को फसल का बारह आना मिलना चाहिए था। कहीं-कहीं तो बटइया पर जमीन लेने के लिए घूस देनी पड़ती है। गुमाश्ता के पास कुरमांवा (बाराचट्टी) में किसानों ने एक एकड़ जमीन बटाई लेने के लिए पचास रुपये जमा किया है।

इसके खिलाफ : यह तो मठ के गांवों की हालत है। ***इसके खिलाफ छात्र युवा संघर्ष वाहिनी साल भर से मैदान में है। संघर्ष वाहिनी आयी तो अकेली थी पर उसके साथ अब मैदान में मजदूर किसान समिति है। मजदूर-किसान समिति मजदूरों और छोटे किसानों का संगठन है।*** इसका निर्माण पिछले अक्टूबर के मजदूर किसान शिविर सम्मेलन शेखवारा में हुआ था। ये दोनों संगठन इस क्षेत्र में वर्ग चेतना और वर्ग संगठन बनाने में जुटे हैं। माध्यम भूमि संघर्ष है, पर इस संघर्ष में अब सामाजिक संघर्ष और प्रशासन से संघर्ष भी जुड़ गया है।

सवर्णपंजा : 1962 के पहले मठ के गांवों में चमार और भूईयां दोनों जातियों में शादी-व्याह और अन्य सामाजिक मौकों पर ब्राह्मण नहीं आता था। लोग या तो खुद काम करते थे या नाई आता था। कुछ गांवों में तो ब्राह्मण के आने के साथ नउआ को हटा ही दिया गया है। अब बाल बनाने के लिए भी उसे नहीं बुलाया जाता। बाल लोग आपस में बनाया-बनवाया करते हैं। चमारों में 1962 से तिलक-दहेज की शुरुआत हो गयी है और भुइयों में भी अब होने लगी है। इन नयी रीतियों की शुरुआत का माध्यम इन इलाकों के वे लोग रहे हैं जो कोलियरी में काम करते हैं और पैसा जमा कर सकते हैं। ***पहले पर्दा भी नहीं था, अब पैसे के साथ-साथ पर्दा भी आने लगा है अब इन कुरीतियों और पर्दे का फैलाव कोलियरी के कामगारों और पैसे वालों से आगे बढ़कर खेतिहर मजदूरों और गरीबों में भी समा रहा है। साफ है सवर्ण संस्कृति यहां भी मजदूरों को जकड़ने के लिए अपना पंजा फैला रही है। दहेज और पर्दा दिनोंदिन इस समाज की औरतों की हैसियत को ज्यादा से ज्यादा गुलाम बनाता जा रहा है।*** परबनिया (बाराचट्टी) गांव में मालूम हुआ कि एक शादी में 9 भात यानी 9 शाम खाना गोतिया-नातेदारों को खिलाना पड़ता है। 200-300 की पियाकी (शराब-ताड़ी) चलती है। हर शादी में 400 रुपये कर्ज आता ही है। वह भी 72 रुपये सैकड़ा सालाना की दर पर। उस गांव में 15-16 परिवारों में किसी के पास भी 200 रुपये से कम कर्ज नहीं था। वहां के महावीर दास ने बताया कि दो परिवार तो केवल शादी के कारण बेजमीन हो गये हैं। एक ने चौदह कट्ठा (50 डिसमिल लगभग) एक ने बारह कट्ठा (42 डिसमिल लगभग) नामी (बहुत अच्छी) जमीन बेची है। महावीर दास और कुछ जागृत लोगों की कोशिश के कारण अब शादी में कुल तीन भारत चलता है, तब भी कर्ज हो जाता है। अमारूत (शेरघाटी) के रामकेश्वर सिंह ने, जिनके पास दो सौ एकड़ से भी अधिक जमीन है, एक बेजमीन मजदूर से 50 रुपये का सूद 5000 वसूला। यह रकम उसके पुत्र को कोयला खदान में काम करने के बाद बोनस और वेतन में मिली थी। केशिला (बोधगया) के राजेन्द्र पांडे ने रामवृक्ष दास से 90 रुपये का सूद 1898 रुपये लेने की कोशिश की। शादी में कर्ज से नहीं जकड़ने का रास्ता भी लोगों ने खुद तैयार किया है—जयमाल पर शादी।

24-25 फरवरी को झाझ (बाराचट्टी) में किसान मजदूर शिविर हुआ, इस शिविर में बाराचट्टी प्रखंड के बीच गांवों से मजदूर किसान प्रतिनिधियों को बुलाया गया था। सात-आठ गांवों से लोग आये थे। इन गांवों की रपट के आधार पर मांग पत्र बना। अंचलाधिकारी को देने के लिए चार विषय पर बातचीत हुई। ये विषय थे—1. भूमि संघर्ष की रणनीति, 2. प्रशासन, राजनीति और शिक्षा, 3. जाति, संस्कृति और औरत, 4. संगठन।

इसके तीसरे दिन बाराचट्टी में जुलूस निकला। इसमें 500 की संख्या में मजदूर और छोटे किसान थे। 70 औरतें थीं। थाना और अंचल कार्यालय पर प्रदर्शन हुआ। थाना पर दिये गये स्मरण-पत्र में फसल सहित बटइया पर से मजदूरों को उजाड़े जाने की खबर मिलने पर भी थाने द्वारा कोई कार्रवाई न किये जाने की निन्दा की गयी थी। ***अंचलाधिकारी को दिये गये मांग पत्र में दो तरह की मांगें थीं–व्यापक और क्षेत्रीय। व्यापक मांग में मठ की देखभाल की सरकारी व्यवस्था करने, मठ की सम्पत्ति की सही जानकारी जनता को देने, फर्जी, गैर मजरूआ जमीन को बांटने, ट्रस्ट को रद्द करने और मठ की जमीन की गैर कानूनी बिक्री को बंद करवाने की मांग सरकार से अंचल की मारफत की गयी है। क्षेत्रीय मांग में गोसाई पेसरा के मजदूरों को तीस साल की बटाई की मालकियत देने और बगीचे के जमीन की बिक्री बंद करवाने, मझीगामा, जयप्रकाश नगर और परबतिया में पीने और सिंचाई के पानी के लिए कुएं की व्यवस्था करने, घड़ीघड़ी बांध से कुरमावां सहित इन गांवों के जमीन के पटने की व्यवस्था करने, झाझ की सर्वे की व्यक्तिगत जमीन को मठ के कब्जे से मुक्त कर उसे असली मालिक को दिलवाने और सभी गांव के मजदूरों को मठ से न्यूनतम तय मजदूरी दिलवाने की मांग की थी।***

बाराचट्टी प्रखंड का गोसाई पेसरा गांव लड़ाई की सबसे तेज जमीन बना हुआ है। मजदूरों को दबाने के लिए गुमाश्ता ने छह महीने पहले मजदूरों को मठ से हटाया था। मजदूरों के बटइया के खेत किसानों को दे दिये थे। इसके बावजूद मजदूर लड़ाई कर रहे

हैं। 14 फरवरी को छोटे किसानों और मजदूरों ने मिलकर फैसला किया—हममें से कोई भी मठ की जमीन नहीं जोतेगा, जो जोतेगा उसे रोका जायेगा। 25 फरवरी को दरोगा झाझ आये थे। मजदूरों को बहकाने की कोशिश के दौरान कहा था—जमीन या तो राजस्वमंत्री उपेन्द्रनाथ वर्मा देंगे या फिर जयराम गिरि। निर्वाचित विधायिका 26 और 27 फरवरी को झाझ आयी। वे पौने दो साल के बाद यानी इस बार चुराव जीतने के बाद पहली बार यहां आयी थीं, उन्होंने कहा, 'मैं चुप नहीं बैठी हूं, आपका काम कर रही हूं।' ***एस.डी.ओ. और अंचलाधिकारी साथ में थे, प्रशासन को संदेह है कि गोसाई पेसरा में नक्सली सक्रिय हैं। यह संदेह मजदूरों को नक्सली के नाम पर दबाने की साजिश भी हो सकती है।*** प्रदर्शन की संख्या तथा चरित्र से यह साफ था कि ये मजदूर शांतिमय लड़ाई लड़ने वाले लोग हैं और फुसलाये जा सकने वाले नहीं।

जयमाल विवाह : प्रदर्शन के बाद आमसभा हुई—आमसभा में कौवावार (शेरघाटी) के भेलू रविदास और शिवगंज (बाराचट्टी) की फूलोरानी की शादी जयमाल पर हुई—बिना मंतर और पंडित के, बिना तिलक और दहेज के। दो माला के खर्च पर शादी पूरी हो गयी। यह यहां के दबे समाज में घुस रही सवर्ण संस्कृति पर करारी चोट थी। सभा में चंदा कर सभा की ओर से नयी ब्याही जोड़ी को साड़ी, ब्लाउज और गमछी दिया गया। इस शादी को ठीक करने में परबतिया (बाराचट्टी) के महावीर दास और मझीगामा (बाराचट्टी) के केशो दास की बड़ी भूमिका रही। इस इलाके में यह घटना अपने तरह की दूसरी घटना है। इसके पहले इसी क्षेत्र के यादव जाति के दो मुखियों ने अपने बेटे-बेटी की शादी जयप्रकाश नारायण के सामने जयमाला पर की थी। रविदास (चमार) जाति में यह पहली घटना है। जयमाल पर ही और भी शादियां तय हुई हैं।

15 अगस्त, जिस दिन देश के हुक्मरान मध्यावधि चुनाव से न डरने की घोषणा करते हुए तोपों की गड़गड़ाहट में स्वतंत्रता दिवस मना रहे थे, उसी दिन इसी बोधगया में (जहां भगवान बुद्ध को मोक्ष की प्राप्ति हुई थी) हजारों की संख्या में भूमिहीन मजदूर-किसान भूमि मुक्ति हेतु संकल्प दिवस मनाकर अपने आंदोलन को और तीव्र कर रहे थे। यह आंदोलन पार्टियों की वोट राजनीति से परे असली जनशक्ति के अस्तित्व का द्योतक है।

सर्वप्रथम एक लंबा जुलूस निकाल कर बोधगया के महंत एवं स्थानीय पदाधिकारी के खिलाफ प्रदर्शन किया गया और फिर एक आम सभा में मजदूर किसान भाइयों ने अपने शहीद भाइयों को श्रद्धांजलि अर्पित की। यह पहला अवसर था जब इस क्षेत्र के गरीब मजदूर एवं औरतों ने खुलकर महंत को चुनौती दी। सात दिन पहले ही 8 अगस्त को बोधगया महंत के सैकड़ों लठैतों और गुंडों ने भूमि मुक्ति आंदोलन के पांचू मांझी (25) तथा रामदेव मांझी (35) इन दो सत्याग्रहियों की हत्या दिनदहाड़े कर दी थी। इस घटना में महंत का एक गुमाश्ता भी मारा गया था और कई लोग घायल हुए थे।

बोधगया महंत से मजदूरों के संघर्ष का एक लम्बा इतिहास है। मजदूरों एवं स्थानीय लोगों का कहना है कि एक ओर बोधगया क्षेत्र की 12 हजार एकड़ से अधिक जमीन महंत के कब्जे में परती और बेकार पड़ी हुई है और दूसरी ओर इस क्षेत्र के हजारों भूमिहीन गरीब-मजदूर महंत के सामंतवादी शोषण के शिकार हैं। भूमि सुधार कानून के बनने के बाद महंत ने अपनी सारी जमीन एक नहीं 18 विभिन्न न्यासों में बांटकर इन जमीनों पर कब्जा जमाये रखा। इसके अलावा हजारों एकड़ बेनामी जमीन अभी भी मठ के अधीन बतायी जाती है। जो बात लोग अब समझने लगे हैं वह यह है कि धर्म और अध्यात्म का प्रतीक यह मठ और मठाधीश गरीबों के शोषण पर फलता-फूलता रहा है और गरीबों का शोषण न धर्म है न अध्यात्म है।

इस तथाकथित अध्यात्मवाद से ऊब कर सर्वप्रथम 1971-72 में भारतीय साम्यवादी दल ने महंत के खिलाफ संघर्ष शिवराजपुर गांव में छेड़ा था। यह हरिजन भूमिहीनों का एक छोटा-सा गांव है। बगल का गांव है पाकरडीह जो उच्च वर्गीय भूमिहार जाति की बस्ती है। इसी गांव के लोग साम्यवादी दल के नेता हैं। कहा जाता है कि पहले यहां की जमीन इन्हीं के पुरखों की थी जिस पर बाद में मठ का अधिकार हो गया था, भूमिहार लोग कई बार महंत को इस जमीन से बेदखल करने की भी कोशिश करके विफल रहे थे। बाद में इन्हीं लोगों ने शिवराजपुर के मजदूरों को दल के आधार पर भड़काया। मजदूर रात में चुपके से खेत से फसल लूटने लगे। यह प्रक्रिया अधिक दिनों तक नहीं चल पायी। संघर्ष में एक स्थानीय साम्यवादी कार्यकर्ता स्व. चूरामन माली की हत्या भी हुई जिसका आरोप मठ के एक संचालक दीनदयाल गिरि पर है। इस हत्या के बाद एक तरफ मजदूरों का मनोबल टूटा और दूसरी ओर महंत ने बड़ी चतुराई से चार मजदूर नेताओं को पांच-पांच एकड़ भूमि तथा 40 मजदूरों को पांच-पांच कट्ठा (एक बीघे का चौथाई) देकर आंदोलन को समाप्त कर दिया।

1974 में बिहार आंदोलन शुरू हुआ। जगह-जगह जनता सरकार की स्थापना हुई। तमिलनाडु के एक कर्मठ सर्वोदय नेता एस. जगन्नाथन तथा उनकी पत्नी कृष्णम्मा ने गया को ही अपना क्षेत्र चुना और जनता सरकार के माध्यम से तीन काम अपने हाथों में लिये। (इसमें तरुण शांति सैनिक के रूप में इस पंक्ति के लेखक भी शामिल थे।) संघर्ष तथा रचनात्मक काग्रक्रम के अंतर्गत गरीबों में वितरित भूदान जमीन पर सिंचाई एवं आंदोलन में लगे परिवारों की औरतों के लिए चरखा कताई से रोजी-रोटी की व्यवस्था। इस तरह धीरे-धीरे मजदूर संगठित और प्रशिक्षित होते गये। लोगों में चेतना आयी और कुछ दिनों बाद महंत की

प्रायः सभी कचहरियों (जहां से महंत वसूली आदि का प्रबंध करते हैं) के सामने प्रदर्शन किये गये। 18 अप्रैल 1975 को भूखी-प्यासी और चिथड़ों में लिपटी लगभग ग्यारह सौ औरतों ने मठ के सामने उपवास किया और गरीबों में जमीन बांटने का सवाल उठाया। इस ऐतिहासिक उपवास को लोकनायक जयप्रकाश नारायण का भी नैतिक समर्थन प्राप्त हुआ था। उपवास के दिन जेपी बोधगया पहुंचे थे और उन्होंने महंत के लिए सुबुद्धि की कामना की थी। फिर भी महंत का विवेक नहीं जागा। 23 जून 1974 से पांच दिनों तक पांच सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने लगातार उपवास किया। 26 जून को देश में आपातकाल की घोषणा हुई और 27 जून को यह उपवास टूटा। दो-तीन दिनों के अंदर जगन्नाथजी सहित 84 मजदूरों को गिरफ्तार कर लिया गया। फिर भी मजदूर भीतर ही भीतर संगठित होते रहे। जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद स्थानीय युवकों ने खुलकर मजदूरों के बीच काम करना शुरू किया। मजदूरों को संगठित करने में मुख्य भूमिका छात्र युवा संघर्ष वाहिनी की रही।

8 अप्रैल 1978 को छात्र युवा संघर्ष वाहिनी ने युवा संवेदनाओं को गांव के मजदूर किसानों से जोड़कर शोषण के खिलाफ अपने संघर्ष की बुनियाद डाली और इस बुनियाद को वाहिनी ने संपूर्ण क्रांति के अगले चरण की शुरुआत माना। हजारों की संख्या में आये मजदूरों का एक लंबा जुलूस निकाला गया और एक सभा का भी आयोजन किया गया। महंत के नाम प्रसारित एक खुले पत्र में वाहिनी ने लिखा : आप याद रखें कि संघर्ष वाहिनी के सैनिकों, भूमिहीन और खेतिहर मजदूरों का यह सम्मिलित प्रदर्शन संपूर्ण क्रांति के नये और अगले चरण की सांकेतिक शुरुआत है। गरीबों का हक मिलने तक यह संघर्ष चलता रहेगा और निरंतर तीव्र होता जायेगा। आशा है समय रहते आप का विवेक जागेगा। अन्यथा दलित-शोषित जनता की वेदना में छिपा विस्फोट किसी भी दिन आपके भगवान को झूठा और गलत साबित कर देगा।

इसी घोषणा के बाद संघर्ष वाहिनी के साथ इस क्षेत्र में संगठन एवं सर्वेक्षण कार्य में सक्रिय रहे। विभिन्न शिविरों के माध्यम से मजदूरों के बीच प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया गया। जिसका बहुत ही अच्छा प्रभाव मजदूरों पर पड़ा। इन्हीं शिविरों में हुई चर्चाओं के माध्यम से मजदूर किसान समिति जैसे वर्ग संगठन और भूमि मुक्ति सेना जैसी संस्थाओं का स्वरूप बना और निखरा भी। भुइया जाति (हरिजन) के लोगों में जो हर पल नशे में डूबे रहते थे, एकाएक नैतिक परिवर्तन शुरू हुआ। खुद-ब-खुद उन्होंने शराब पीना बंद कर दिया। शराब पीने वालों को समाज से बहिष्कृत किये जाने की भी बात उठायी। ***औरतों पर जुल्म न ढाये जायें ऐसा संकल्प पुरुषों ने लिया और साधारण तरीके से शादियां भी शुरू हुई जैसा कि आप पढ़ चुके हैं। इस तरह रूढ़िवादी धाराएं टूटने लगीं। धीरे-धीरे 'जो जमीन को जोते-बोये, वो जमीन का मालिक होये' के नारे से सारा इलाका गूंजने लगा। लाख चतुराई के बावजूद महंत की चिन्ता बढ़ती गयी। जब महंत के सामने एक नया सवाल आ खड़ा हुआ कि उसे विभिन्न 18 न्यासों का न्यासधारी बने रहने का कोई अधिकार नहीं है।*** तो महंत के चतुर व्यवस्थापक जयराम गिरि ने एक योजना बनायी। तत्कालीन जिलाधीश श्री प्रेमप्रकाश शर्मा के साथ मिलकर एक न्यासधारी परिषद का निर्माण किया और महंत को डरा धमका कर सारा अधिकार इस परिषद के हाथों सौंप दिया। इस न्यास के एक सदस्य तत्कालीन जिलाधीश भी (अपने घर के पते से) हैं और चार अन्य महंत के ही लोग हैं। ***कुछ भी हो परंतु इस न्यास परिषद के बनने से महंत को मजदूरों के संघर्ष का मुकाबला करने में कानून की आड़ मिल गयी। भला आज की कानून व्यवस्था गरीब भूमिहीन की सहायक कैसे बन सकती है?***

हलबंद : पूरे क्षेत्र के सौ से अधिक ***गांव सुलग उठे। 30 जून को पेसरा के मजदूरों ने महंत के लोगों को खदेड़ दिया एवं 353 एकड़ जमीन तथा कचहरी पर अधिकार कर लिया। इसके बाद तो लहर और तेजी से पसरती गयी। कटोरवा (एक गांव) भी पेसरा में महंत को खेतों में बीज भी नहीं डालने दिया गया। मजदूरों ने खुद सामूहिक खेती के लिए बीज डाले।*** जिन क्षेत्रों में महंत के लोगों ने बीज डाल दिये थे वहां लोगों ने रोपनी न करने देने का संकल्प लिया। इस तरह ***मजदूरों ने खेतों में असहयोग आंदोलन शुरू कर हल चलाना बिल्कुल बंद कर दिया।***

परंतु वह नहीं टूटे : महंत ने अब बाहर से मजदूर लाकर हल जुताना शुरू किया, मजदूरों ने हल खोल, जल्दी भागो का नारा दिया और इस नारे ने एक आंदोलन का रूप ले लिया। इस तरह पेसरा, कटोरवा, लय, जमुना, मस्तीपुर तथा पिपरमांती आदि गांवों में मजदूर किसानों ने महंत की जमीन न जोतने का फैसला लिया। गोसाई पेसरा के मजदूर किसान तीन सौ एकड़ जमीन पर कब्जा कर उनमें तेजी से फसल लगाने लगे। बगलगीर गांव, कुरमामा, छोटकी तुरी, बड़की तुरी, डंगरा आदि गांव संगठित होकर सहयोग देने लगे। इधर महंत इस आंदोलन को तोड़ने का षड्यंत्र रचता रहा। भूमिहीनों को आपस में तोड़ने के लिए किसान बटाईदार समिति का निर्माण किया और उसकी मार्फत उनके बीच भूमि बांटने का झूठा प्रलोभन भी दिया। ***परंतु मजदूर नहीं टूटे।***

इसी संदर्भ में 7 अगस्त 1979 को बोधगया प्रखंड के मजदूरों का बाजे-गाजे के साथ जुलूस निकला। ***जुलूस में करीब एक हजार मजदूरों ने हिस्सा लिया जिनमें 300 औरतें थीं।*** मगध विश्वविद्यालय के परिसर से कटोरवा, टीकाबीघा होता हुआ

जुलूस बोधगया आ रहा था। टीकाबीघा से आधा मील पहले एक बगीचे में प्रदर्शनकारी आराम कर रहे थे कि बम और राइफल छूटने की आवाज आयी। इसके बावजूद प्रदर्शनकारी डरे नहीं, आगे बढ़ते गये। उस दिन महंत भाकपा के स्थानीय नेताओं के सहयोग से टीकाबीघा में जमीन जोतवा रहे थे। यह भी शंका थी कि महंत के लोग जुलूस पर हमला करेंगे, इसीलिए वाहिनी के नेताओं ने जिलाधिकारी को पहले से खबर दे दी थीं लेकिन जिलाधिकारी ने इस बात को बहुत ही हलके ढंग से लिया था—सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की थी।

बोधगया में जुलूस पहुंचने के बाद सभा हुई। सभा का सर्वसम्मत निर्णय था : *गांव की जमीन गांव की है।* सभा खत्म होने के बाद महंत ने भाकपा की सहायता से करीब 50 मजदूरों को जुलूस टीकाबीघा से निकाला जो जेपी विरोधी नारे लगाते हुए मठ में जाकर समा गया।

शाम को वर्षा होने के कारण वाहिनी के सुशील, प्रभात, कारु, कंचन कुमुद और रमेश मस्तीपुर गांव में ठहर गये। इन युवा नेताओं को थोड़ा-सा भी एहसास नहीं था कि महंत के लोग इन पर हमला करेंगे। 8 अगस्त को सुबह 5-6 बजे से ही मठ के संन्यासी और दलालों का गिरोह मस्तीपुर में चक्कर काटने लगा। संन्यासियों ने पहले घूम-घूमकर मजदूरों को समझाने की कोशिश की कि खेत तो आप ही जोतते हो, महंत से झगड़ा करने से क्या लाभ है।

मजदूरों ने स्पष्ट ढंग से कहा कि जमीन हमारी है और हम लेकर रहेंगे। करीब आठ बजे तक जापानी मंदिर के सामने वाली कचहरी में हथियारों से लैस करीब 70-80 लठैत जमा हो गये। 10 बजे से कचहरी के दक्षिण के खेतों में 7 हल चलने लगे। इससे गांव के मजदूरों में आक्रोश जगा। दो-तीन घंटे के अंदर मस्तीपुर तथा आसपास के गांवों के ढाई तीन सौ लोग जमा हो गये। करीब 3 बजे अपराह्न में जुलूस के रूप में परिणत होकर उस जमीन पर सत्याग्रह करने के लिए चले। जुलूस जापानी मंदिर के पास कचहरी से आधा किलोमीटर दूर ही था कि महंत के लठैत जुलूस पर टूट पड़े। पहले बम फेंका, फिर गोलियां चलायीं। बम जुलूस तक नहीं पहुंच सका। जानकी मांझी और रामदेव मांझी को गोली लगी। रामदेव मांझी घटना स्थल पर ही मर गया। दोनों को वाहिनी के नेता कारु ने जापानी मंदिर में रखा और थाना में खबर देने चल दिया। कारु को थाना में पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। 20-25 मिनट बाद पुलिस घटनास्थल पर पहुंची। तब तक महंत के गुंडों की बम और पिस्तौल की मार निहत्थे मजदूरों पर होती रही। एक बम पांचू मांझी के पेट में आकर लगा जिससे उसकी अंतड़ी निकल गयी। रामबली मांझी और विपत दुसाध का पैर बम के छिटके से घायल हो गया। संघर्षवाहिनी की बहादुर छात्रा सुश्री कंचन घायलों को लेकर अस्पताल चली गयी। ***'मारे न, केतनन के मरतई, बाकी खेतवा जोते तो नहिये देबई। हम मर जबई तब की होतई, हमर बचवन सब तो हथिन न',*** कहते-कहते पांचू मांझी शहीद हो गया।

इस संदर्भ में रामाधार सिंह की मृत्यु उल्लेखनीय है। रामाधार सिंह मस्तीपुर मठ के गुमाश्ता थे। डॉक्टरी रपट के अनुसार उनकी मृत्यु गंड़ासे या अन्य किसी तेज धार वाले हथियार से हुई है। महंत ने इस हत्या का अभियुक्त संघर्ष वाहिनी के प्रदीप को बनाया है। प्रदीप सिंह रामाधार सिंह का भतीजा है। दोनों के बीच अच्छा संबंध था। कुछ दिनों से बोधगया महंत के मैनेजर जयराम गिरि से रामाधार सिंह की नहीं पटती थी। लोगों का अनुमान है कि रामाधार सिंह की हत्या जयराम गिरि से दुश्मनी का परिणाम है। रामाधार सिंह की हत्या रामचंद्र यादव मुखिया के दरवाजे पर, जो घटनास्थल से दूर है, हुई। जयराम गिरि और रामचंद्र यादव के बीच दोस्ती है इसलिए लोगों को अपना अनुमान सही बैठता दिखाई देता है।

पुलिस जुल्म : पुलिस ने संघर्षवाहिनी के सदस्य प्रभात को पकड़ने के बाद धमकी दी 'यहां मेरी तानाशाही चलती है, खाल उधेड़कर जेल में बंद कर दूंगा।' प्रभात ने कहा 'अगर आपकी तानाशाही चलती है तो मेरा हर तानाशाह से लड़ना काम है।' प्रभात के मुंह से इतना निकलना था कि पुलिस के सारे लोग उसके जानी दुश्मन हो गये। आरक्षी उपाध्यक्ष ने कहा 'जीप में बैठाओ साले को, सब नेतागिरी निकालते हैं।' प्रभात को पुलिस ने जीप पर बैठा लिया। इस भय से कि पुलिस वाले कहीं ले जाकर इसे जान से भी मार सकते हैं, सुशील और फिरंगी भी पुलिस जीप में सवाल हो गये। संघर्षवाहिनी के बाहरी नेताओं में अकेले सुश्री कुमुद बच गयी। वह अकेले मजदूरों को समझाती रही। मजदूरों के आक्रोश को गलत दिशा में जाने से उसने बचाया।

प्रभात, सुशील और फिरंगी पुलिस जीप में कैद होकर बोधगया थाना पहुंचे तो देखते हैं कि कारु पहले से पुलिस हाजत में बंद हैं। लोकनायक की संघर्षवाहिनी के चारों नेताओं की पिटाई जिलाधिकारी और आरक्षी अधीक्षक की मौजूदगी में 7 बजे संध्या से शुरू हो गयी और देर रात तक चलती रही। जिलाधिकारी ने आदेश दिया 'ये साले नेता बनते हैं, सबको मारकर खराब कर दो।' थाना प्रभारी भूपेन्द्र सिंह प्रभात को गाली देते हुए आक्रमण किया और सुशील ने जब वहां 'आप लोग ठीक कर रहे हैं,' तो और अधिक उग्र होकर उस पर भी झपटा, संघर्ष वाहिनी के सदस्यों से प्रभात ने बार-बार पूछा, 'तुम लोग किस जाति को हो?' जब उन्होंने अपनी जाति बताने से इनकार किया तो आरक्षी अधीक्षक ने कहा, 'डोम चमार ही होगा सब, और क्या होगा?'

प्रशासन और पुलिस का दिमाग जिस तरह जातीय कठघरों में बंटा हुआ है, उससे उसने यही समझा होगा क्योंकि संघर्षवाहिनी के गिरफ्तार चारों नेता काले थे। यह संभव था कि इन नेताओं का चेहरा गोरा और उच्चकालीन होता तो इतने निर्मम ढंग से पुलिस द्वारा इनकी पिटाई हुई नहीं होती।

भारतीय समाज इस ढंग से टुकड़ों में बंटा हुआ है कि उच्च वर्ण और वर्ग के लोगों के लिए गरीब मजदूरों का नेतृत्व करना भी आसान हो जाता है।

(दिनमान 5-15 सितंबर, 1978 से साभार) ❑

आधी आबादी

फिर भी महिलाएं किसान का दर्जा न पा सकीं

❑ सुरेश भाई

देश भर में भूमि अधिग्रहण बिल को लेकर जितनी गर्माहट आयी है, उतनी भूमि के प्रति सर्वाधिक जिम्मेदार महिलाओं के भूमि अधिकार पर चर्चा नहीं हो रही है। देश में 85.2 प्रतिशत महिलाएं प्रतिदिन औसत 3-9 घंटे तक कृषि कार्य करती हैं। कृषि संबंधी अलग-अलग कार्य जैसे—बीज की तैयारी में 83.9, बुआई में 72.6, सिंचाई में 64.2, निराई में 69.7 प्रतिशत कार्यों में महिलाओं का पुरुषों से अधिक योगदान है, फिर भी महिलाएं पुरुषों के मुकाबले कानूनी तौर पर किसान नहीं मानी जाती हैं। इसी तरह देखें तो महिलाएं घरेलू एवं कृषि कार्यों में पुरुषों से कहीं अधिक 18-18 घंटे काम पर व्यस्त रहती हैं लेकिन चिन्ताजनक है कि कृषि भूमि पर महिलाओं को आसाम में 1.80, हिमाचल प्रदेश में 6.79, जम्मूकश्मीर में 7.68, मध्य प्रदेश में 7.17, उड़ीसा में 2.74, पंजाब में 0.71, राजस्थान में 6.04, पश्चिम बंगाल में 3.4, उत्तर प्रदेश में 6.5 प्रतिशत भूमि पर ही वैधानिक अधिकार हैं।

भारत के सभी हिमालयी राज्यों में कृषि कार्य में 83 प्रतिशत से भी अधिक महिलाओं के पास कृषि कार्य की जिम्मेदारी है। इन्होंने अपनी जैविक खेती को बचाकर रखा है फिर भी प्रतिवर्ष उनकी काश्त की कृषि भूमि कम हो रही है। देश में 1.08 करोड़ हेक्टेयर कृषि भूमि पिछले वर्षों तक खेती से बाहर हो चुकी है। इसका सबसे अधिक प्रभाव महिला किसानों को झेलना पड़ रहा है। समाज की आधी आबादी महिलाओं की है, फिर ऐसी क्या बात है कि महिलाओं को भूमि पर अधिकार देने की बात नहीं उठ रही है। उनकी आजीविका और सुरक्षा की मांग भीख की तरह मांगनी पड़ती है। समाज में जिस रूढ़ीवादी व्यवस्था ने महिलाओं को पुरुषों से कमतर आंका है, वही व्यवस्था काफी हद तक इसके लिए जिम्मेदार है। समाज में पुरुषों को कथित तौर पर सर्वश्रेष्ठ मानने की परम्परा को त्यागने वाले लोगों की कमी के कारण महिला अधिकारों पर चर्चा होने के बावजूद भी समस्या का समाधान करने में पिछड़ जाते हैं। कृषि का काम जीविका से जुड़ा हुआ है। जिसे पुरुषों से कहीं अधिक महिलाएं संचालित करती हैं, जबकि भूमि अधिग्रहण भी पुरुषों की सहमति से होता है। यदि महिलाओं की भागीदारी इसके निर्णय में हों तो वह पहले तो अपनी भूमि नहीं देंगी, यदि किसी कारण देना भी पड़ेगा तो एक सच्चे किसान की तरह भूमि के बदले भूमि की मांग करेंगी। जीविका का मूल आधार कृषि है। पशुपालन कृषि की उत्पादकता बढ़ाता है। जंगल इससे अछूते नहीं हैं। जंगल, पानी के प्राकृतिक बांध हैं। यदि जंगल है तो खासकर पर्वतीय खेत्रों में ढालदार असिंचित व सिंचित खेती में आर्द्रता बनी रहती है। कृषि के इस संतुलन शास्त्र में महिलाओं को अपने जीवन का अधिक समय लगाना पड़ता है। परस्परावलंबन का यह एक ऐसा त्रिकोण है जिसमें कृषि भूमि, पशु, जंगल और इसके मध्य में महिलाओं पर अवलंबित रूपरेखा बनाती हैं। अतः समझ सकते हैं कि महिलाओं पर अकेले इसका कितना बोझ है। इसके बाद भी महिला किसान नहीं कहते, जबकि किसानी वही करती हैं। वर्तमान में महिलाएं देश भर में जमीन बचाने के आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं। चाहे अब जलवायु परिवर्तन भी एक चुनौती क्यों न हो, जिसका सामना करने के लिए उनकी सीधी मांग उनके कृषि और पशुपालन से संबंधित रही है। पुरुष का जन्म से ही अपनी खानदानी कृषि भूमि पर अधिकार है लेकिन लड़कियों को इस सम्पत्ति पर अधिकार को मान्यता नहीं है। जबकि 1956 के बाद हिन्दू स्त्रियों को सम्पत्ति पर अधिकार मिला है। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अनुसार पुत्रों के साथ-साथ पुत्रियों का भी कृषि भूमि पर बराबर का अधिकार है लेकिन लैंगिक भेदभाव के कारण समाज में इसकी सच्चाई पुरुषों की मानसिकता पर ही निर्भर हैं, जहां विधवा महिलाएं खेतों में हल चलाती आ रही हैं। लेकिन किसान का दर्जा उसके मृतक पति को ही है। देश भर में कई राज्यों के किसान बही में महिलाओं के नाम नहीं हैं। विपरीत परिस्थिति में वह कृषि भूमि पर अपना दावा प्रस्तुत नहीं कर सकती है। जीवन की तमाम अच्छाइयों को जमीन पर उतारने वाली और विपरीत परिस्थितियों को सहन करने वाली महिलाओं के जीवन को सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित बनाने के लिए हर सरकार का काम है कि महिला हितों में बनाये गये सभी कानूनों को सामाजिक मान्यता दिलवाना प्राथमिकता बननी चाहिए, इसलिए महिलाओं को क्यों नहीं किसान का दर्जा दिया जा सकता है। बजट में भी महिला किसानों को ध्यान में रखा जाय तो देश में कृषि विकास के कारण को नया जीवन मिल सकता है। यूपीए के समय से चली आ रही राष्ट्रीय कृषि विकास योजना का काम महिलाओं की जिम्मेदारी में हो तथा किसान बही पर स्पष्ट रूप से पुरुषों के अनुसार महिलाओं को समान रूप से महिला किसान का दर्जा मिले। ❑

अपनी भूमि पर बेघर आदिवासी

❑ प्रशांत कुमार दुबे

मध्य प्रदेश के श्योपुर जिले का सहरिया आदिवासी समुदाय देश का सर्वाधिक कुपोषित आदिवासी समुदाय है। लेकिन उसकी खेती की जमीनों पर गैर आदिवासियों ने अपना कब्जा जमा लिया। ऐसा तब हो रहा है जबकि उनका क्षेत्र संविधान की पांचवीं अनुसूची में आता है, जहां पर गैर आदिवासी उनकी जमीन की खरीद फरोख्त ही नहीं कर सकते। वैसे सरकारें भी गरीबों के हित में पहल करने से बचती रही है। **–कार्य. सं.**

मध्य प्रदेश के श्योपुर जिले के कराहल ब्लॉक के मायापुर गांव की सामंधे आदिवासी (सहरिया) महिला पिछले दो दशक से अपनी 19 बीघा सिंचित जमीन पर कब्जा लेने की लड़ाई लड़ रही हैं। इस प्रक्रिया में वह कई बार पटवारी, तहसीलदार, कलेक्टर कार्यालय जा चुकी हैं। अनेक जनसुनवाइयों में उनका आवेदन लगा है। सरकारी तंत्र से आस टूटी तो एकता परिषद जैसे जनसंगठन के साथ मिलकर लड़ाई शुरू की। उन्होंने जनादेश 2007 में भी भाग ले लिया है। दिल्ली के जंतर-मंतर, आगरा और ग्वालियर आदि तक स्थानों पर जा चुकी हैं। भू-अधिकारों के लिए ऐतिहासिक जन सत्याग्रह 2012 में भी गयीं। परंतु उनकी अपनी लड़ाई अभी जारी है।

सामंधे के पति बद्री यह लड़ाई लड़ते-लड़ते चल बसे। उनके तीन बेटे हैं। एक विकलांग है और दो बच्चे काम और मजदूरी के अभाव में गांव छोड़कर जयपुर पलायन पर गये हैं। गरीबी की इस चरम स्थिति में भी उनके पास राशन कार्ड नहीं है। पहले था, लेकिन बाद में वह भी छीन लिया गया। गांव में काम नहीं मिलता, जॉब कार्ड कोरे पड़े हैं। अतः उन्हें कभी जंगल से लकड़ी लाकर बेचना पड़ता है तो कभी नदी के पत्थर तोड़ने पड़ते हैं। एक ट्राली पत्थर तोड़ने पर 300 रुपये मिलते हैं और इतना काम 7 दिनों में हो पाता है।

यह कहानी अकेली सामंधे की नहीं है बल्कि इस गांव के 45 आदिवासी परिवारों के पास उनकी अपनी ही जमीन के कब्जे नहीं है। आज उनकी जमीनों या तो पंजाब से आये सरदारों ने कब्जा कर लिया या फिर श्योपुर के रसूखदारों ने। ज्ञात हो कि आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासी की जमीन किसी दूसरे के नाम पर स्थानांतरित नहीं हो सकती है पर यह सब कैसे हो गया और होता जा रहा है, यह समझ से परे है?

सहरिया एक आदिम जनजाति समुदाय है जो कि देश की 75 संकटग्रस्त प्रजातियों में से एक है। इंटरनेशनल फूट पालिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट (इफ्प्री) की मानें तो इस समुदाय में खाद्य सुरक्षा की गंभीर स्थितियां हैं और इनके बच्चों में पाया जाने वाला कुपोषण इथोपिया और चाड जैसे अफ्रीकी देशों से भी ज्यादा खतरनाक है। यदि इस समुदाय के साथ भू-सुधारों की पहल होती है तो निश्चित रूप से यह इन्हें भूख की स्थिति से भी निजात मिलेगी। पर पिछले लंबे समय से चल रही इस राजनीतिक लड़ाई को अभी तक वास्तविक धरातल नहीं मिल पाया है। वैसे भी राजनीति संसाधनों के समान बंटवारे पर या तो मौन रहती है या फिर अपनी मुखर प्रतिक्रिया नहीं देती, क्योंकि उसके तार भी सामंतवाद से गहरे से जुड़े रहते हैं। सरकारें भी गरीब समुदायों के सिर्फ वोट चाहती हैं।

महात्मा गांधी के अनुयायी विनोबा भावे के नेतृत्व में सन् 1951 में जन्मे भूदान आंदोलन ने पहले अमीरों को अपनी भूमि भूस्वामियों को स्वमेव प्रेरित किया बाद में यह भूदान अधिनियम बन गया। इस अधिनियम के अंतर्गत सरकार को भूमि बैंक से भूमि का वितरण करना था। तिरसठ बरस पूरे कर चुके आंदोलन के अंतर्गत पिछले छः दशकों में सरकार ने 9,71,000 हेक्टेयर जमीन भूमिहीनों में बांटी है। मध्य प्रदेश में 4.10 लाख एकड़ जमीन दान में आयी थी और उसमें से 2.37 लाख एकड़ जमीन का ही वितरण हुआ, बाकी की 1.7 लाख एकड़ जमीन नहीं बंटी, पर चम्बर घाटी, सामंधे और मायापुर जैसे प्रकरण बताते हैं कि जो जमीन भी बंटी वह जमीन दरअसल में उन्हें मिली ही नहीं जो इसके हकदार थे बल्कि जमीन तो दबंगों ने हथिया ली। सरकार के पास वर्तमान में इस भूमि से संबंधित कोई लिखित जानकारी नहीं है। ऐसी स्थिति में यह इतनी आसान प्रक्रिया नहीं है और इसके लिए संघर्ष जारी रखना होगा।

भूमि सुधारों पर दोनों ही सरकारों (केन्द्र एवं राज्य) ने अपने-अपने तीरके से लोगों को बरगलाया है। जब लगभग दो वर्ष पहले मध्य प्रदेश से निकलन 50 हजार पदयात्री जन-सत्याग्रह अभियान के तहत दिल्ली की ओर कूच कर रहे थे तब शिवराज सरकार ने उनकी मंशा भांपी और स्वयं मुख्यमंत्री ने यात्रा में पहुंचकर कहा कि मध्य प्रदेश जो कर सकता है और उसके दायरे में जो अधिकार हैं, वह किया जायेगा। उस समय खूब तालियां बजी लेकिन वायदे यकीन में नहीं बदल पाये और नतीजा फिर वहीं ढाक के तीन पात...।

सामंधे भी उस यात्रा में थीं और आज भी भटक रही हैं। इसी प्रकार केन्द्र ने कहा था कि वह भूमि सुधार नीति घोषित करेगी। यह नीति तो बनकर तैयार है पर सरकारी लेतलाली और व्यापक सुधारों की अनदेखी इस पर भी हावी रही। देखते-देखते 15वीं लोकसभा का अंतिम सत्र भी समाप्त हो गया पर वह भी व्यापक भूमि सुधारों की दिशा में कुछ नहीं कर पाया।

मध्य प्रदेश सरकार भी अपने तईं यह कर सकती थी कि केन्द्र के राष्ट्रीय भूमि सुधार नीति के मसौदे की तरह राज्य भूमि सुधार नीति बनाती और उसे लागू करती तथा अपनी ओर से पहल करते हुए वंचित वर्गों की जमीनों पर हुए अवैध कब्जों की पहचान करतीं और उन्हें कब्जे से छुड़ाती। पर ऐसा नहीं हुआ। श्योपुर जिले के श्योपुर, कराहल और विजयपुर ब्लॉक के 239 गांवों में 1024 हेक्टेयर जमीन दबंगों के कब्जे में है। इससे पूरे प्रदेश में की भयावह स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। एक अनुमान के मुताबिक केवल ग्वालियर चम्बल संभाग में ही आदिवासियों और दलितों की 20 हजार बीघा जमीन दबंगों के कब्जे में है।

आदिवासियों ने एकता परिषद के ही आनुशंगिक संगठन महात्मा गांधी सेवा आश्रम के साथ मिलकर 2007 से लड़ाई लड़नी शुरू की और बाद में 35 लोगों को नोटिस हो पाया लेकिन उनमें से अधिकांश के मौके कब्जे शेष हैं। सामंधे और बाकी अन्य गांव वालों के सामने तो करो या मरो की स्थिति ही निर्मित हो गयी है। शासन व्यवस्था की नाकामी पर सामंधे कहती हैं कि सरकार से तो कोई आस नहीं है अब तो आस बस आंदोलन से ही बची है।

गतिविधियां एवं समाचार

गांधी को ब्रिटिश एजेण्ट कहना अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण

गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र जोधपुर की कार्यकारिणी की आवश्यक बैठक में सभी सदस्यों ने सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश मार्कण्डेय काटजू द्वारा महात्मा गांधी के बारे में दिये गये बयान की निन्दा की है। अध्यक्ष कुंदनमल जैन ने कहा कि गांधीजी ने देश की स्वतंत्रता के लिए पूरा जीवन समर्पित किया जो देश व दुनिया के जनमानस के पटल पर आज भी विद्यमान है। अतः बापू को ब्रिटिश एजेण्ट कहना तथ्यहीन एवं दुखद है। इस प्रकार की तथ्यहीन बातें करना अत्यन्त अशोभनीय है। देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है लेकिन इस प्रकार का आरोप उचित नहीं है। बैठक में आशा बोथरा, भावेन्द्र शरद, डॉ. पद्मजा शर्मा, धर्मेश रूटिया, डॉ. ओ.पी. टॉक सहित सभी सदस्यों का मत था कि गांधीजी ने देश में सबको जोड़ने का कार्य किया एवं अहिंसा को मजबूती देकर स्वतंत्रता आंदोलन में महती भूमिका निभायी। **–भावेन्द्र शरद् जैन**

श्रद्धांजलि सभा का आयोजन

विनोबा ज्ञान मंदिर के तत्त्वावधान में प्रमुख गांधी विचारक एवं गांधी-कथा के प्रवचनकर्ता श्री नारायण देसाई की स्मृति में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। 17 मार्च को आयोजित इस अवसर पर सर्वधर्म प्रार्थना एवं भजन के साथ-साथ विभिन्न वक्ताओं ने अपने स्मरण एवं अनुभव सुनाये। विनोबा ज्ञान मंदिर के मंत्री डॉ. अवध प्रसाद ने कहा कि श्री नारायण देसाई का परिवार देश में आदर्श परिवार एवं त्यागमय जीवन का दुर्लभ उदाहरण है। वक्ताओं ने कहा कि श्री नारायण देसाई ने युवकों को शांति, सत्याग्रह, श्रम, समय का उपयोग एवं गांधी विचार का अभ्यास कराया और समाज के प्रति कर्तव्य की अनुभूति करायी। **–डॉ. अवध प्रसाद**

सर्व सेवा संघ प्रकाशन समिति के संयोजक बदले

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) ने अपने एक कार्यालय आदेश से सर्व सेवा संघ प्रकाशन समिति के संयोजक को बदल दिया है और सर्व सेवा संघ परिसर वाराणसी के संयोजक भाई शिवविजय सिंह को प्रकाशन समिति का प्रभारी संयोजक बनाया है। शिवविजय भाई ने 1 अप्रैल 2015 से अपना प्रभार भी ग्रहण कर लिया है। **–कार्य. सं.**

संपादक के नाम पत्र

गांधीजी एवं चुनीकाका को श्रद्धांजलि

गांधी स्मृति के उपलक्ष्य में विनोबा भवन, सर्वोदय आश्रम, कलम्बरोड, यवतमाल में सर्वधर्म प्रार्थना सभा का आयोजन किया गया। महावीर विद्या मंदिर, वाधापुर रोड, यवतमाल के छात्रों ने नरसी मेहता द्वारा रचित गांधीजी का प्यारा भजन *'वैष्णव जन तो तेणे कहिए'* प्रस्तुत किया।

गांधीजी ने अठारह रचनात्मक कार्यक्रम और ग्यारह एकादश व्रत कार्यकर्ताओं के लिए दिये थे, उनमें से अपने पसंद के मुताबिक किसी एक का चयन करके उसे अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास हम सभी को करने की बात अध्यक्ष श्री सुहास सरोदे द्वारा कही गयी।

इस अवसर पर चुनीकाका द्वारा लिखित पुस्तक 'गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ' का पाठ किया गया और उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

अमित सरोदे ने स्व. चुनीभाई वैद्य को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि चुनी काका बड़े आंदोलनकारी थे, जिन्होंने दूध का दूध, पानी का पानी अलग करके गांधी की हत्या का सच दुनिया के सामने रखा, तब से बहुत से लोगों की आंखें खुलीं।

इस अवसर पर सानेगुरुजी विद्यालय मेटीखेड़ा, महावीर विद्यालय वाघापुर और सर्वोदय विचार-परिषद, कस्तूरबा योग निसर्गोपचार महाविद्यालय तथा निसर्ग खेती मित्र-मंडल यवतमाल की ओर से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एवं चुनी काका को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गयी। **–सुजाता फाले**

शिक्षिका, महावीर विद्या मंदिर, वाघापुर, यवतमाल

पत्र द्वारा गतिविधियों से अवगत कराने के लिए धन्यवाद। आशा है भविष्य में आप इसी तरह आपका सहयोग प्राप्त होगा।

–कार्य. सं.

कविता

नाटकबाज

❑ बृजराज सिंह

"वह इस सदी का सबसे बड़ा नाटककार है"
माफ कीजिएगा!
मुझसे थोड़ी भूल हो गयी
मैं नाटककार की जगह नाटकबाज शब्द का प्रयोग करना चाहूंगा
अब यह वाक्य कुछ इस तरह से पढ़ा जाना चाहिए
"वह इस सदी का सबसे बड़ा नाटकबाज है"

वह अपनी नित्य क्रियाएं नाटक में ही करता है और
बहुत सारी क्रियाओं का सिर्फ नाटक करता है
यह बात सिर्फ उसे मालूम होती है कि
वह कब नाटक के भीतर रहता है, कब बाहर

वह जब भी बोलता है
अपने लिखे नाटकों के ही संवाद बोलता है
और उसकी सफलता इसी बात में है
कि लोग उसकी बातों को सही मान लेते हैं

सामूहिक हत्याएं करना उसका पसंदीदा शगल है
और लोग हैं कि उसे नाटक समझ तालियां पीटते हैं
वह हाथ की सफाई भी जानता है
अपने खून से सने हाथों को लोगों के सामने कर देता है
और लोग हैं कि उसे चूमने लगते हैं
वह बड़ी ही सफाई से लोगों की हलक में हाथ डाल देता है
और लोग मुस्कराने लगते हैं
वह एक रस्सी फेंकता है आसमान में
और लोगों से मनवा लेता है कि वह स्वर्ग की सीढ़ा बना सकता है
उसने इन्हीं नाटकों के जरिए अपने लिए सफलता के मुकाम तय किये हैं

वह सभाओं में लोगों से गांधी और अम्बेडकर की बातें करता है
और कमरे में जाकर पेट पकड़ कर हँसता है
वह हर दिन नए तरीके से खुश होता है
जैसे कि आज उसने एक नाटककार को अपना कायल बना लिया
या जब उसके जमूरे उसके नाटकों का अभ्यास करते हैं
और उसे सदी का सबसे बड़ा नाटकबाज कहते हैं
यह सब उसके नाटक की कलाबाजियां हैं

कितना मुश्किल है भीतर से हँसना और ऊपर से रोना एक साथ
यह वही कर सकता है जिसने साध लिया हो
सतुआ खाना और शहनाई बजाना, एक साथ
उसने साध लिया है
हत्या में रुचि लेना और अहिंसा का पुजारी बने रहना, एक साथ
वह अपने समूह में किसी को बोलने नहीं देता
और दुनिया भर में अभिव्यक्ति की आजादी का ढोल पीटता है
उसने साध ली है यह विद्या
कि घोड़े और घास की दोस्ती कैसे करायी जाती है
उसने ऐलान कर दिया है कि
अब सब नाटककार अपनी कलमें रख दें
सिर्फ वही और वही लिखेगा इस समय के नाटक
उसने सीख लिया है हँसना और गाल फुलाना एक साथ

आज हर तरफ उसकी नाटकबाजी के ही चर्चे हैं
दुनिया भर के तानाशाहों का वह मुरीद है
और देखिये उसकी नाटकबाजी
कि लोग उसे लोकतंत्र का सिपाही कहने लगे हैं ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार, कार्य.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1450